मानव संस्कार ग्रन्थमाला-पाँचवां पुष्प

जीवन
बहुत सुन्दर है।
आइये!
इसे वैदिक ज्ञान से और
सुन्दर बनायें।

प्रतिदिन स्वाध्याय करें

वैदिक विचार संग्रह

मदन लाल अनेजा
मो० 9873029000

A word about

MANAV SANSKAR FOUNDATION

4A, 3rd Floor, Street No. 12, New Gobind Pura, Delhi-110051

Dear Readers,

"Manav Sanskar Foundation" is a public charitable trust. It was set up on 4th December' 2012 and registered with the Government of National Capital Territory of Delhi on 10th December' 2012, wholly for charitable purposes. Its main objects are as under:-

(i) to work for educational and spiritual upliftment of the common man;

(ii) to publish books and other material on educational, social and spiritual subjects including **Vedas & Upanishads**;

(iii) To establish, run, support and grant financial assistance to the Gurukuls and children of under privileged persons of society;

(iv) To establish and maintain old age homes;

(v) To open and establish charitable dispensaries and;

(vi) To open free legal aid and advice centres for the poor and the helpless people, particularly women. The Trust, in addition to the present book, has published so far several pamphlets, leaflets and four books and distributed them free of cost for spiritual upliftment of the general public irrespective of caste, sex, creed or religion besides providing free legal advice to the needy.

The Trust shall appreciate your participation in the donations out of your hard-earned and sacred earnings for the social and noble cause. The Trust accepts only cheque/draft in the Foundation Account as under:-

Current Account No. **0646002104049820**
Punjab National Bank (RTGS/NEFT IFS Code: PUNB0064600)
F-2/3, Krishna Nagar, Delhi-110051
Our website:- **www.manavsanskar.com**
Our e-mail:- **manavsanskar.mla@gmail.com**

(M.L. Aneja)
President
Manav Sanskar Foundation

The Author is a Joint Registrar (Retired), Supreme Court of India and Former Advisor (Law), National Human Rights Commission, New Delhi.

जीवन
बहुत सुन्दर है।
आइये!
इसे वैदिक ज्ञान से और
सुन्दर बनायें।
(प्रतिदिन स्वाध्याय करें)

वैदिक विचार संग्रह

लेखक/संकलनकर्ता
मदन लाल अनेजा

प्रकाशक :
मानव संस्कार फाउन्डेशन
दिल्ली–110051,
Website - **www.manavsanskar.com**
e-mail - **manavsanskar.mla@gmail.com**

प्रकाशक :

मदन लाल अनेजा

मानव संस्कार फाउन्डेशन

4 ए (तीसरी मंजिल) नया गोविन्द पुरा,

राम मन्दिर गली, दिल्ली-110051,

मो0- 09873029000,

Website -

www.manavsanskar.com

e-mail -

manavsanskar.mla@gmail.com

© सर्वाधिकार- मदन लाल अनेजा

पुस्तक मिलने का पता :-

1. विक्रान्त अनेजा

सी-79, तक्षशिला अपार्टमेन्ट,

प्लाट नं0-57, आई0पी0

एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

2. मदन लाल अनेजा

कुटिया नं0 -179, मुख्य शाखा,

आर्य वानप्रस्थ आश्रम,

ज्वालापुर, हरिद्वार

All rights reserved. No part of this publication be reproduced, stored in a retrievel system, translated or transmitted in any form or by any means,electronic, mechanical, photocopying, recordng or otherwiese without the prior permission of the writer.

प्रथम संस्करण : नवम्बर 2019

(वेद प्रचार-प्रसार हेतु वितरण)

All books of Manav Sanskar Foundation
can be down-loaded free of cost

at :

www.manavsanskar.com

मुद्रक :

.....

.....

।। ओ३म् ।।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-249404

(नैक "A", ग्रेड प्राप्त एवं यू.जी.सी. एक्ट 1956 के सेक्शन 3 के अन्तर्गत समविश्वविद्यालय)

GURUKULA KANGRI VISHWAVIDYALAYA, HARIDWAR-249404

(NAAC "A" Grade Accredited Deemed to be University u/s 3 of UGC Act 1956)

प्रो० रूप किशोर शास्त्री
कुलपति
(पूर्व सचिव म.सा.रा.वे.वि.प्र., उज्जैन),
(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार)

Prof. Roop Kishor Shastri
Vice-Chancellor
(Ex. Secretary MSRVVP Ujjain)
(Ministry of HRD, Govt. of India)

क्रमांक / *Ref. No.* 1–2/कु.का./बा.पत्र./

दिनांक / *Date* 02 दिसम्बर, 2019

शुभाशंसनीयम्

परम स्वाध्यायनिष्ठ श्री मदनलाल अनेजा द्वारा सङ्कलनपुरस्सर प्रणीत **वैदिक विचारसङ्ग्रह** नामक पुस्तक देखने एवं पढ़ने को उपलब्ध हुई, जिसे श्री अनेजा जी ने प्रभूत स्वाध्याय एवं परिश्रम के साथ तैयार किया है। वेदवाटिका से चुनकर तैयार किया गया इनका यह पुस्तकप्रसून सुवासित है। वेदज्ञान एवं वैदिक सिद्धान्तों से एवं ऋषि दयानन्द द्वारा प्राख्यात विवेक सम्मित स्वमन्तव्यामन्तव्य वेद पथ से सम्पन्न तथा वैदिक सिद्धान्ताधारित इस पुस्तक में स्वामी जी के मन्तव्य एवं वेदज्ञान का भाव पदे पदे देखने को मिला है।

भाषा अत्यन्त सहज सरल एवं हृदयग्राह्य है। वेदज्ञान पर आधारित यह पुस्तक वैदिक सिद्धान्तों की विवेचना के साथ-साथ विवेकसम्मित व्यवहार पक्ष की प्रबल पोषक है। धर्माचरण एवं कर्तव्यबोध इस पुस्तक का उज्ज्वल पक्ष कहना बहुत ही समीचीन है। आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्तादि पर जहाँ लेखक ने लेखनी चलाई है वहीं, वैदिक संस्कृति, सभ्यता एवं स्वस्थ परम्पराओं के क्रियान्वयन पर स्वाध्यायी लेखक का विशेष बल रहा है। सुखी, सशक्त, समृद्ध, आत्मतोषी जीवन को नित्य एवं दैनिक व्यवहारशील बनाने का सन्देश देना इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है ऐसा मेरा मानना है।

अनेजाजी द्वारा प्रणीत यह पुस्तक सभी दृष्टि से सर्वजन हिताय सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है, पुस्तक लेखक को हार्दिक बधाई।

दिनांकः 02 दिसम्बर, 2019

(प्रो० रूप किशोर शास्त्री)
कुलपति

पो०ऑ० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार–249404, उत्तराखण्ड (भारत)
P.O. Gurukula Kangri, Haridwar-249404, Uttarakhand (INDIA)
Tel. : +91-73007-61329 (O), Fax: +91-133-424-6699, +91-133-424-5265, E-Mail: vcoffice@gkv.ac.in, roopjishastri@yahoo.com, roopjishastri@gmail.com, Website: www.gkv.ac.in

Scanned by CamScanner

।। ओ३म् ।।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-249404

(नैक 'A', ग्रेड प्राप्त एवं यू.जी.सी. एक्ट 1956 के सेक्शन 3 के अन्तर्गत समविश्वविद्यालय)

GURUKULA KANGRI VISHWAVIDYALAYA, HARIDWAR-249404

(NAAC "A" Grade Accredited Deemed to be University u/s 3 of UGC Act 1956)

प्रो० रूप किशोर शास्त्री
कुलपति
(पूर्व सचिव म.सा.रा.वे.वि.प्र., उज्जैन),
(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार)

Prof. Roop Kishor Shastri
Vice-Chancellor
(Ex. Secretary MSRVVP Ujjain)
(Ministry of HRD, Govt. of India)

क्रमांक / *Ref. No.* 1-2/कुका/वापत्र/

दिनांक / *Date* 02 दिसम्बर, 2019

शुभाशंसनीयम्

परम स्वाध्यायनिष्ठ श्री मदनलाल अनेजा द्वारा सङ्कलनपुरस्सर प्रणीत **वैदिक विचारसङ्ग्रह** नामक पुस्तक देखने एवं पढ़ने को उपलब्ध हुई, जिसे श्री अनेजा जी ने प्रभूत स्वाध्याय एवं परिश्रम के साथ तैयार किया है। वेदवाटिका से चुनकर तैयार किया गया इनका यह पुस्तकप्रसून सुवासित है। वेदज्ञान एवं वैदिक सिद्धान्तों से एवं ऋषि दयानन्द द्वारा प्राख्यात विवेक सम्मित स्वमन्तव्यामन्तव्य वेद पथ से सम्पन्न तथा वैदिक सिद्धान्ताधारित इस पुस्तक में स्वामी जी के मन्तव्य एवं वेदज्ञान का भाव पदे पदे देखने को मिला है।

भाषा अत्यन्त सहज सरल एवं हृदयग्राह्य है। वेदज्ञान पर आधारित यह पुस्तक वैदिक सिद्धान्तों की विवेचना के साथ-साथ विवेकसम्मित व्यवहार पक्ष की प्रबल पोषक है। धर्माचरण एवं कर्तव्यबोध इस पुस्तक का उज्वल पक्ष कहना बहुत ही समीचीन है। आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्तादि पर जहाँ लेखक ने लेखनी चलाई है वहीं, वैदिक संस्कृति, सभ्यता एवं स्वस्थ पराम्पराओं के क्रियान्वयन पर स्वाध्यायी लेखक का विशेष बल रहा है। सुखी, सशक्त, समृद्ध, आत्मतोषी जीवन को नित्य एवं दैनिक व्यवहारशील बनाने का सन्देश देना इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है ऐसा मेरा मानना है।

अनेजाजी द्वारा प्रणीत यह पुस्तक सभी दृष्टि से सर्वजन हिताय सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है, पुस्तक लेखक को हार्दिक बधाई।

दिनांक: 02 दिसम्बर, 2019

(प्रो० रूप किशोर शास्त्री)
कुलपति

पो०ऑ० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार-249404, उत्तराखण्ड (भारत)
P.O. Gurukula Kangri, Haridwar-249404, Uttarakhand (INDIA)
Tel. : +91-73007-61329 (O), Fax: +91-133-424-6699, +91-133-424-5265, E-Mail: vcoffice@gkv.ac.in, roopjishastri@yahoo.com, roopjishastri@gmail.com, Website: www.gkv.ac.in

विषय सूची

क्रम संख्या	विषय	वैदिक विचार संख्या
	भूमिका	
1.	धर्म एवं मानवता	1
2.	ज्ञान कर्म और ईश्वर भक्ति	2
3.	आत्मा का भोजन	3
4.	ईश्वर-उपदेश एवं चरित्र	4
5.	बुद्धि-सुमति, अनुमति, कुमति, विमति	5-8
6.	मनुष्य जीवन की प्राप्ति एवं सफलता	9
7.	उपकार एवं यज्ञ	10
8.	मानवीय नियम	11
9.	उपकार एवं दान	12
10.	परोपकार एवं ईश्वर भक्ति	13
11.	शारीरिक रोगों से स्थायी मुक्ति के उपाय (मानसिक रोग व उनका निवारण)	14-21
12.	अज्ञानता सबसे बड़ा अभिशाप	22
13.	कर्मफल व्यवस्था का वैदिक स्वरूप	23-43
14.	मनुष्य योनि में हमारे कर्म व उनका फल	44-46
15.	अति उत्तम मनुष्य योनि पाने के लिए वैदिक उपाय	47-59

16.	ओ३म् शब्द द्वारा जप विधि	60
17.	गायत्री मन्त्र की जप विधि	61
18.	प्रार्थना-उपासना में वैदिक भजनों का महत्त्व (प्रातःकाल बोलने के 2 भजन)	62 (क-ख)
19.	प्राणायाम द्वारा जप करने से लाभ (सायंकाल बोलने के 2 भजन)	63 (क-ख)
20.	नववर्ष पर लेने का संकल्प	64
21.	मंत्र जप एवं उपासना	65
22.	मनुष्य योनि प्राप्त करने के लिए 4 अन्य वैदिक उपाय	66-69
23.	पंच महायज्ञ-सुखी ग्रहस्थ का आधार	70
24.	धर्म का स्वरूप एवं धर्म कर्म की ग्यारह शाखायें	71-86
25.	मोक्ष-मुक्ति प्राप्ति का उपाय	87
26.	वेद माता एवं चार वेद	88
27.	वैदिक संस्कृति-सबका साथ-सबका विकास	89
28.	उपकार, परोपकार एवं सेवा की विधि	90
29.	तप का महत्त्व, अर्थ एवं प्रकार	91-102
30.	प्राणायाम एवं श्वसन क्रियायें	103-107
31.	मन का तप	108-109

32.	उपासना–सन्ध्या में सफलता एवं ईश्वर, जीव, प्रकृति का स्वरूप, वैदिक उपासना के लाभ आदि	110–116
33.	वैदिक सन्ध्या उपासना एवं मंत्र उच्चारण विधि	117
34.	यज्ञ (हवन)	118–124
35.	हवन मन्त्र उच्चारण की विधि व इसके लाभ एवं हवन/यज्ञ के बारे में कुछ भ्रान्तियाँ	125–127
36.	हवन (यज्ञ) विधि – गायत्री मंत्र द्वारा	128–134
37.	यज्ञ (हवन) की सूक्ष्म विधि	135–136
38.	समाज में प्रचलित कुछ मान्यतायें व उनकी सत्यता	137–140
39.	साधना हेतु शारीरिक शुद्धि के कुछ अचूक उपाय	141–145
40.	ब्रह्मचर्य व ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित अन्य विषय	146–148
41.	ब्रह्मचर्य के प्रकार	149
42.	ब्रह्मचर्य के लाभ	150–151
43.	ब्रह्मचर्य पालन न करने से हानियाँ	152
44.	किशोर एवं युवा अवस्था	153
45.	स्वभाविक एवं अस्वभाविक जीवन	154
46.	ब्रह्मचर्य सम्बन्धी अन्य जानकारी	155–181

भूमिका

जीवों में दो तरह का ज्ञान होता है। पहला है स्वाभाविक ज्ञान। यह पशु-पक्षियों में अधिक होता है। उनको इसी ज्ञान से पूरा जीवन बिताना होता है। इस ज्ञान से पशु-पक्षी खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना तथा बच्चे पैदा करना (नित्य कर्म) ही कर सकते हैं। इसका जीव को कोई फल नहीं मिलता है।

दूसरा है नैमित्तिक ज्ञान। यह सीखने से सीखा जाता है। यह ज्ञान पशु-पक्षियों में बहुत कम और मनुष्य में बुद्धि से सम्बन्ध रखता है। उदाहरण-मनुष्य का बच्चा पैदा होते ही पानी में नहीं तैर सकता। यदि उसे पानी में छोड़ोगे तो तुरन्त डूब जायेगा। जब तक उसे तैरना नहीं सिखाया जायेगा, तब तक वह पानी में नहीं तैर सकेगा-कारण यह मनुष्य के लिए नैमित्तिक ज्ञान है।

मनुष्य का स्वाभाविक ज्ञान खाने-पीने, सोने-जागने, उठने-बैठने तक ही सीमित है। बाकी सभी कार्य वह केवल सीखने से ही सीख सकता है। स्वाभाविक ज्ञान द्वारा किये गये कामों का मनुष्य को भी फल नहीं मिलता। नैमित्तिक ज्ञान से किये गये अच्छे या बुरे कार्यों का फल मनुष्य को ईश्वर देता है। मनुष्य को अच्छे कार्यों का फल सुख के रूप में और बुरे कार्यों का फल दु:ख के रूप में मिलता है। इसीलिए ईश्वर ने मनुष्य को अपने तथा दूसरों के जीवन को सुखी व उन्नत बनाने के लिए वेद ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में ही दिया।

वेद का ज्ञान किसी एक युग या काल के लिए नहीं है। किसी एक

देश या समाज के लिए नहीं है। यह तो हर युग, हर काल, हर देश और हर समाज के लिए है ताकि मनुष्य एक आदर्श व सभ्य जीवन जी सके। जीवन के लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त कर सके। यदि ईश्वर प्रारम्भ में ही मनुष्यों को वेद ज्ञान न देता तो मनुष्य भी अन्य पशु-पक्षियों की तरह अपना जीवन व्यतीत करता। अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वेदों का अध्ययन करे, चिन्तन करे, मनन करे और वैदिक धर्म को अपनाकर अपना व अन्यों के जीवन को उन्नत व सफल बनाये।

मित्रों! इस संग्रह के माध्यम से मैं आपका वैदिक ज्ञान से परिचय के साथ-साथ जीवन में सकारात्मक सोच को लाने के लिए अपने एवं वैदिक जगत् के प्रसिद्ध विद्वानों के वैदिक विचारों की एक श्रृंखला सरल भाषा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। वैदिक ज्ञान व अच्छे विचार जीवन को ऊँची बुलंदियों पर ले जाते हैं। जीवन की हर मुश्किल बड़ी आसानी से दूर कर देते हैं। आशा है आपको भारतीय वैदिक संस्कृति व वेद ज्ञान का पूर्ण लाभ इस पुस्तक में दिये गये वैदिक विचारों के माध्यम से प्राप्त हो सकेगा ताकि आप जीवन की हर कठिन राह में सफलता के अधिकारी बन सकें।

मैं सभी वैदिक विद्वानों को नमन करता हूँ, अपना आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा समाज की सामाजिक व आध्यात्मिक उन्नति में अद्वितीय योगदान दिया है। कुछ वैदिक विद्वानों से प्रेरित होकर मुझे उनके विचारों को इस संग्रह में जन कल्याण के लिए सूक्ष्म में लिखने की प्रेरणा मिली। पाठकगण की सुविधा के लिए जो पाठक इन वैदिक विद्वानों की पुस्तकें पढ़ने के इच्छुक होंगे, उनके लिए वैदिक विद्वानों का नाम व उनकी पुस्तक का विवरण भी प्रत्येक वैदिक विचार के अन्त में दिया गया है।

मदन लाल अनेजा

धर्म एवं मानवता

मनुष्य बने रहने के लिए व्यक्ति का धार्मिक होना सबसे जरूरी है। धर्म क्या है–इसका ज्ञान अच्छी तरह होना चाहिए। धार्मिक हुये बिना कोई भी मनुष्य मानवता को बनाये रखने में सक्षम नहीं रह सकता। धर्म एक ऐसा चश्मा है जिससे मनुष्य को अपने सम्बन्ध व कर्त्तव्य ठीक–ठीक दिखाई देते हैं।

संसार में केवल वही मनुष्य है जो धर्मपूर्वक, श्रद्धा व प्रेमपूर्वक अपने सम्बन्धों और कर्त्तव्यों के प्रति पूर्ण सजगता से समर्पित रहता है। ऐसा व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में धार्मिक है, वही ईश्वर भक्त है।

जो व्यक्ति अपने सम्बन्धों और कर्त्तव्यों के प्रति श्रद्धावान नहीं, वास्तव में वह न तो ईश्वर भक्त है, न धार्मिक है, और ना ही वह मनुष्य है।

साभार - पुस्तक - आर्य कौन, लेखक - आचार्य सत्यवीर

ज्ञान कर्म और ईश्वर भक्ति

ज्ञान के बिना कर्म व्यर्थ है। कर्म के बिना ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं, सुख नहीं। कर्म के बिना दु:खों से छुटकारा नहीं। ज्ञानपूर्वक कर्म करना ही मनुष्य की पहचान है।

ज्ञान और कर्म-दोनों का अहंकार होता है और इस अहंकार से बचने के लिए भक्ति जरूरी है। भक्ति पवित्र और शुद्ध आत्मा से की जाती है। जिसका हृदय पवित्र होगा, विचार उत्तम और नेक होंगे, वही भक्ति कर सकता है।

ईश्वर का नाम जपना ही भक्ति नहीं है बल्कि उसकी जो प्रेरणा और आज्ञा है, उसी के अनुसार आचरण करना, सभी प्राणियों के साथ आत्मवत् व्यवहार करना, प्रकृति के पदार्थों का नियम (त्याग) पूर्वक उपभोग करना, वैदिक मर्यादाओं का पालन करना, अपने कर्तव्य को निष्ठा के साथ कर्तव्य समझकर पालन करना-यही भक्ति है।

भक्ति से काम, क्रोध, अहंकार, स्वार्थ, लोभ, मोह व हिंसा आदि व्यसन और वासनायें धीरे-धीरे समाप्त होती जाती हैं।

साभार - पुस्तक - आर्य कौन, लेखक - आचार्य सत्यवीर

आत्मा का भोजन

आजकल मनुष्य सारी आयु विषयों को भोगने और देह को सजाने में लगा रहा है। शरीर में विराजमान आत्मा रूपी अतिथि हृदयासन पर निराहार पूरी आयु स्थित रहता है लेकिन न तो उससे कोई बात होती है और न ही उसकी बात कोई सुन रहा है।

उपरोक्त परिस्थिति में जब आत्मा शरीर छोड़ता है तो वह भूखा–प्यासा और तिरस्त होकर जाता है। फलस्वरूप शरीर त्याग ने के बाद आत्मा विभिन्न निम्न योनियों में भटकता रहता है।

आत्मा का भोजन है सुविचार–विचारों में शुद्धता, पवित्रता। आत्मा उपदेश भी यही देता है। व्यक्ति जब गलत काम करता है तो आत्मा उसे भय, शोक का अहसास लज्जा आदि द्वारा चेतावनी देती है। आत्मा की आवाज न सुनने पर यह फटकार धीमी तो पड़ जाती है, पर आत्मा अपना कार्य निरन्तर करती रहती है।

विचारों में शुद्धता आती है – यम–नियम के जीवन में पालन करने से। यम पाँच हैं–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। नियम भी पाँच हैं – शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्राणिधान।

आइये अपनी अन्तरात्मा को शुद्ध करें।
जीवन में यम–नियम का पालन करें।
यही अन्त:पवित्र धर्म है।

साभार - पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

ईश्वर-उपदेश एवं चरित्र

भारतीय समाज सदा से चरित्र का पोषक रहा है। मनुष्य में मानवता का सर्वश्रेष्ठ गुण चरित्र है।

चरित्र से व्यक्ति महान बनता है। राष्ट्र महान बनता है।

चरित्र में सम्पूर्ण मानवीय व्यवहार आ जाता है। झूठ बोलना, चोरी करना, निन्दा-चुगली करना, धोखा देना, लोभ आदि समस्त व्यवहार चरित्रहीनता के ही अंग हैं।

चरित्र के नष्ट हो जाने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है।

''आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।''

अर्थात् आचरणहीन व्यक्ति का कल्याण वेद भी नहीं कर सकता। ऐसे व्यक्ति को ईश्वर का उपदेश करना व्यर्थ है।

साभार - पुस्तक - आर्य कौन, लेखक - आचार्य सत्यवीर

अच्छी बुद्धि - सुमति

जो व्यक्ति अच्छी मति के स्वामी हैं उनकी बुद्धि को सुमति कहते हैं। सुमति रखने वाला व्यक्ति अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए व्यायाम, योगाभ्यास करता है। सात्विक भोजन संयम में करता है। उसका आचार व्यवहार उत्तम, जीवन संयमी व चरित्र उच्च कोटि का होता है।

वह यम-नियम और पंचमहायज्ञ के पालन के साथ-साथ परिवार का सुधार, नगर का सुधार, राज्य का सुधार, देश का सुधार और अन्त में विश्व का सुधार करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है।

सुमति वाला व्यक्ति धन का सद्उपयोग करता है। दान देता है। अपने धन से अपने उन सम्बन्धियों की भी सहायता करता है, जो ईमानदार हैं लेकिन जिनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी नहीं है।

ऐसे व्यक्ति का जीना ही वास्तव में जीना है।

साभार-पुस्तक - जीना इसी का नाम है, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

उत्तम बुद्धि - अनुमति

सुमति से उच्च स्तर पर है अनुमति। अनुमति वाला मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक तौर पर स्वस्थ होता है। वह कभी नहीं थकता। मेघ और पहाड़ के समान महान् होता है। चरित्र उच्च होता है। दृढ़ संकल्प वाला होता है।

अनुमति वाले मनुष्य को धन की, संसारिक वस्तुओं की, सुखों की प्यास नहीं होती। वह अकेला ऊँचा नहीं उठता। सबको ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है। दूसरों के दु:खों को दूर करने का बीड़ा उठाता है। समाज में जागृति पैदा कर देता है।

अनुमति वाला व्यक्ति संसार के पीछे नहीं चलता। संसार उसके पीछे चलता है। संसार को/ राष्ट्र को हिला देता है। एक नया इतिहास बना देता है।

ऐसा व्यक्ति समाज के लिए अति उत्तम एवं लाभदायक है। ऐसे व्यक्ति महान होते हैं, चाहे वे राजनीतिक क्षेत्र में हों, धार्मिक क्षेत्र में हों या किसी अन्य क्षेत्र में।

जीना तो इसी का नाम है कि व्यक्ति अनुमति का स्वामी होकर जिये।

साभार - पुस्तक - जीना इसी का नाम है, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी, पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

बुरी बुद्धि - कुमति

कुमति वाला मनुष्य अपने मित्र-सगे सम्बन्धियों, भाइयों, हितकारियों को फलता-फूलता, बढ़ता नहीं देख सकता। धर्म को अधर्म जानना, अधर्म को धर्म समझना, सत्य को असत्य कहना कुमति के प्रतीक हैं।

उदाहरण: केकैई की कुमति के कारण पुरुषोत्तम राम को वनवास मिला। रावण की कुमति ने लंका को राख कर दिया। धृतराष्ट्र एवं दुर्योधन की कुमति ने कौरव कुल का सफाया कर दिया।

कुमति वाला मनुष्य अकारण शत्रु बनता है, विषैली वाणी का प्रयोग करता है। बिना प्रयोजन के दूसरे के काम को बिगाड़ने की योजना बनाता रहता है।

कुमति कई माताओं की पुत्री है। इन माताओं के नाम हैं-अहंकार, काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि।

साभार-पुस्तक - जीना इसी का नाम है, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

अस्थिर बुद्धि - विमति

जिस व्यक्ति का कोई निर्णय नहीं, जिसका कोई निश्चय नहीं, जिसके पास दृढ़ता नहीं-ऐसा व्यक्ति विमति का स्वामी है।

ऐसा व्यक्ति कभी साधक है, कभी दुनियादार, कभी नास्तिक, कभी आस्तिक-कभी ईश्वर को ढूढ़ने गुरुद्वारे जाता है, कभी मन्दिर में, कभी व्यास गुरु का चेला बन बैठता है तो कभी निरंकारी, कभी आर्यसमाजी हो जाता है।

विमति वाले मनुष्य के कुछ गुण हैं- अधिकतर निराश रहना, आशावादी न होना, अक्सर हीन भावना का शिकार होना। वह किसी से कुछ सीख नहीं सकता, हर समय अपने भाग्य को कोसता है, विपत्ति एवं दु:ख में सदैव दूसरों को दोषी ठहराता है। नकारात्मक, भूतकाल अथवा भविष्यकाल की बातों पर अधिक ध्यान देता है।

विमति एक ऐसी दलदल है जिसमें फंसा व्यक्ति जीवन में पूर्ण उन्नति नहीं कर पाता है।

इस समस्या का समाधान है-ऋषि ग्रन्थों का स्वाध्याय करना, वैदिक सत्संग में उपस्थित होना, सकारात्मक सोच व ईश्वर भक्ति।

साभार-पुस्तक - जीना इसी का नाम है, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी, पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

वैदिक विचार -9

मनुष्य जीवन की प्राप्ति एवं सफलता

यज्ञ के दो प्रमुख पक्ष हैं। देव पूजा (ईश्वर भक्ति) एवं दान (परोपकार)। ईश्वर भक्ति को ईष्ट कर्म और परोपकार को आपूर्त्त कर्म कहते हैं।

ईष्ट कर्म केवल मनुष्य ही कर सकता है। इसका फल भी केवल उसे ही मिलता है। आपूर्त्त कर्म कोई भी प्राणी कर सकता है। इसका फल किसी भी योनि में भोगा जा सकता है।

ईष्ट कर्म के परिणामस्वरूप मानव जीवन मिलता है। आपूर्त्त कर्म द्वारा मानव जीवन सफल होता है। केवल आपूर्त्त कर्म (परोपकार) करने से मानव जीवन न मिलकर अन्य प्राणियों वाली योनियाँ (परोपकार के स्तर के अनुसार) मिलती हैं। इसी प्रकार केवल ईश्वर भक्ति (ईष्ट कर्म) करने एवं परोपकार (आपूर्त्त कर्म) न करने से साधारण मनुष्य का जीवन (अगले जन्म में) तो मिलता है लेकिन सफलता एवं सुविधायें नहीं मिलतीं।

अत: मनुष्य को दोनों प्रकार के कर्म ही करने चाहियें। यज्ञ द्वारा दोनों प्रकार के कर्मों की पूर्ति हो जाती है। जिस मनुष्य में याज्ञिक भावना नहीं है वह श्रेष्ठ इंसान नहीं हो सकता।

साभार - पुस्तक - आर्य कौन, लेखक - आचार्य सत्यवीर

उपकार एवं यज्ञ

उपकार करने का एक साधन यज्ञ भी है। यज्ञ किसी भी प्रकार का हो, हर यज्ञ में उपकार है। दीन दु:खियों की सहायता करना भी यज्ञ है। जो व्यक्ति बलिदान देकर अपने सर्वस्व तथा अस्तित्व तक को दाव पर लगा कर, स्वार्थ को त्याग करके, तप करके नर सेवा अथवा राष्ट्र सेवा का संकल्प लेता है। वह व्यक्ति भी यज्ञ करता है। **चिंतन करें-स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र एवं वर्तमान में प्रधानमंत्री मोदी जी की जीवन शैली।**

हवन करना, अग्निहोत्र करना भी यज्ञ है। यह देवताओं (सूर्य देवता, पृथ्वी देवता, वायु देवता, जल देवता) के प्रति समर्पित होने, उनके प्रति कृतज्ञता, धन्यवाद की भावना एवं वातावरण की शुद्धि के लिए किया जाता है। यज्ञ हमारे दूषित विचारों को दूर करता है। शुद्ध विचार उत्पन्न करता है। ईश्वर भक्ति में सहायक होता है।

हवन की अग्नि में डाले जाने वाली सामग्री में चार प्रकार के पदार्थ होते हैं। पहला रोगनाशक, दूसरा पुष्टिकारक, तीसरा सुगन्धवर्धक और चौथा मिष्ठ। गाय के घी के साथ उपरोक्त प्रकार की सामग्री हवन कुण्ड में डालने से वायु प्रदूषण निश्चित रूप से कम होता जाता है।

यज्ञ (हवन) घर में स्वयं करने के लिए ''यज्ञ विधि'' www.manavsanskar.com से नि:शुल्क download करें।

साभार-पुस्तक - उपकार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

मानवीय नियम

वैदिक चिन्तन के आधार पर तीन ही सत्तायें हैं। प्रकृति, जीव और ईश्वर। शारीरिक सुख, मानसिक शान्ति और आत्मिक आनन्द के लिए क्रमशः प्रकृति, जीव व ईश्वर के नियमों का पालन करना अनिवार्य है। इनके पालन करने से मानवता को सुरक्षित व जीवित रखा जा सकता है। इन्हें मानवीय नियम भी कह सकते हैं।

मनुष्य की जीवनचर्या–खाना, पीना, उठना–बैठना, सोना, जागना–यह सब प्रकृति के नियमों के अनुसार अथवा अनुकूल होना चाहिये, नहीं तो शरीर शीघ्रता से नष्ट हो जायेगा।

जीव व समाज के नियमों को सामाजिक नियम कहते हैं। इनका उल्लंघन करने से मानसिक तनाव होता है। एक स्वस्थ व्यक्ति भी जब सामाजिक नियमों को भंग करता है तो वह लोगों की नजरों में गिर जाता है। उसके दुःख में कोई सहानुभूति प्रकट नहीं करता।

परोपकारमय जीवन ही ईश्वरीय नियम है। ईश्वरीय नियमों का पालन करना ईश्वर की व्यवस्था में सहयोग है। इसके भंग करने से आत्मिक परेशानी होती है। इसलिए हमें यम–नियम का पालन करते हुये यज्ञीय जीवन व्यतीत करना चाहिये।

साभार - पुस्तक - आर्य कौन, लेखक - आचार्य सत्यवीर

उपकार एवं दान

उपकार करने का एक माध्यम दान भी है। धन की तीन गतियाँ हैं-(1) दान, (2) अपने उपभोग में लाना, (3) विनष्ट हो जाना। जो व्यक्ति न तो दूसरे को दान देता है और न स्वयं उसका उपभोग करता है, उसके धन की तीसरी गति होती है उसका धन का विनाश हो जाता है।

धर्म की सिद्धि के लिए, अर्थ प्राप्ति के लिए, कामनाओं की पूर्ति के लिए, लज्जावश, मन की प्रसन्नता के लिए या भय के कारण दान दिया जाता है। यदि व्यक्ति सक्षम है तो दान अवश्य देना चाहिए। त्याग भावना से दान देना उत्तम, बदले में कुछ लेने की भावना से दान देना मध्यम और काम के बदले किसी को कुछ देना निकृष्ट दान है।

दान देकर पश्चाताप करना, कुपात्र को दान देना और बिना श्रद्धा के दान देना-यह तीन कारण दान के नाशक हैं।

दानी व्यक्ति का इस संसार में मान सम्मान होता है। समाज में उसे उच्च और उचित स्थान मिलता है। दान देने से मन को शान्ति होती है। पारलौकिक फल भी मिलता है।

दान श्रद्धा से देना चाहिये-शक्ति अनुसार देना चाहिये।

साभार-पुस्तक - उपकार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

परोपकार एवं ईश्वर प्राप्ति

परोपकार के समान कोई धर्म नहीं और पर पीड़ा के समान नीचता नहीं। परोपकार का अर्थ है दूसरे की भलाई। मनुष्य यदि शक्ति रखते हुए दूसरों के काम नहीं आता तो उसका जीवन दूषणपूर्ण है।

परोपकार ईश्वर प्राप्ति का एक सोपान है। व्यक्ति जितना परोपकारी बनता जाता है वह उतनी ही ईश्वर की समीपता प्राप्त करता है।

परोपकार के तीन साधन हैं -

1. परामर्श :- निशुल्क परामर्श देने वाला व्यक्ति जब हितकारी परामर्श देता है तो वह परोपकार करता है और परामर्श लेने वाले व्यक्ति को त्रुटि करने से बचाने में सहायता करता है।

2. कर्म सिद्धि में सहायता :- किसी व्यक्ति को सही कार्य करवाने में सहायता करना। जैसे दुर्बल और मरीज की सेवा, वृद्ध व्यक्ति/बीमार व्यक्ति को सड़क पार करवाना आदि आदि।

3. आर्थिक सहायता अर्थात् दान देना :- दान को बहुत पुण्य माना गया है। दानी व्यक्ति में नम्रता आती है। वह मीठा बोलता है। अच्छा व्यवहार करने की उसे ईश्वर से प्रेरणा मिलती है।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

शारीरिक रोगों से स्थायी मुक्ति के उपाय

आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति व आयुर्वेद के अनुसार मानसिक रोग कई प्रकार के शारीरिक रोगों को जन्म देते हैं अथवा उनको बढ़ाने में सहयोग देते हैं। इनमें प्रमुख हैं-पेट में जलन, गैस, अलसर, रक्तचाप, डिप्रेशन, हार्ट अटैक, शुगर, शरीर में जगह-जगह दर्द आदि। यह शारीरिक रोग व्यायाम/प्राणायाम करने एवं दवाईयाँ खाने पर अस्थायी रूप से ठीक तो हो जाते हैं लेकिन साथ-साथ मनोरोग के उपचार पर ध्यान दिये बिना या तो पूर्णतया: ठीक नहीं होते अथवा ठीक होने में अधिक समय लेते हैं अथवा पुन: हो जाते हैं।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हम शारीरिक व्यायाम करते हैं, प्राणायाम करते हैं, दवाईयाँ खाते हैं लेकिन मनोरोग को समाप्त करने अथवा उसको संयम में रखने का उपाय नहीं करते। कब कोई व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, भय आदि से अतिग्रस्त हो जाये इसका अनुमान लगाना कठिन है। मानसिक रोगी का उपचार करना और भी मुश्किल होता है क्योंकि ऐसा व्यक्ति स्वयं को रोगी न मानकर सामने वाले को रोगी मानता है। अत: बिना रोगी की पहिचान व उसके सहयोग के बिना उसका उपचार करना भी कठिन है। मानसिक रोगों से मुक्ति पाने अथवा उनको संयम में रखने के उपाय अगले लेखों में दिये जायेंगे।

संक्षिप्त में रोगी को कर्मफल व्यवस्था का ज्ञान होना चाहिए। यम नियम का पालन करना चाहिये। सत्संग, ध्यान, ईश्वर भक्ति में हृदय से रुचि होनी चाहिए।

पहला मानसिक रोग व उसका निवारण

भय

सबसे बड़ा जो मानसिक रोग अन्दर से पैदा होता है, उसका नाम भय है। भय पैदा होने के मुख्य कारण हैं–पाप कर्म करना, अवैध कार्य करना, गलत आचरण करना–उदाहरण: एक व्यक्ति जब चोरी करता है तो वह छुप कर करता है ताकि वह पकड़ा ना जा सके। पर स्त्री गमन वाला व्यक्ति छुप कर अपनी काम वासना पूरी करता है जिससे समाज में उसका अनादर न हो। जो व्यक्ति पापी है, दुराचारी है, सामाजिक नियमों का उल्लंघन करता है, उसके मन में सदैव भय की भावना बनी रहती है। इसे आन्तरिक दु:ख भी कह सकते है।

भय के कारण व्यक्ति मानसिक तनाव में रहता है। फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की बीमारियों का शिकार हो जाता है–मुख्य रूप से उच्च रक्तचाप, शुगर, हृदय रोग आदि।

सुपथ पर चलना, सादा जीवन व्यतीत करना, कोई पाप कर्म न करना, किसी से बैर विरोध न करना, ईर्ष्या, द्वेष न करना, यम–नियम का पालन करना–भय रूपी मानसिक रोग से बचने के उपाय हैं।

साभार–पुस्तक - चुल्लू भर पानी, लेखक - डॉ. सुभाष अभिलाषी

दूसरा मानसिक रोग व उसका निवारण

अहंकार

अहंकार भीतर से पैदा होने वाला दूसरा मानसिक रोग है दु:ख है। अहं का अर्थ है-मैं। जो कुछ हूँ मैं हूँ ऐसा कोई नहीं। जितना मैं बलवान् हूँ, इतना कोई बलवान नहीं। जितना मैं सुन्दर हूँ इतना कोई सुन्दर नहीं। मेरे पास बहुत धन और समाज में मेरा ऊँचा रुतबा है। इसीलिए मैं किसी की परवाह क्यों करूँ। यह भावना अभिमान और अहंकार की सूचक हैं।

अभिमानी व्यक्ति केवल अपने आपको जानता है। पहचानता है। दूसरों से विचार विमर्श करने में अपने आपको नीचा समझता है। ऐसे व्यक्ति के ज्ञान में कभी वृद्धि नहीं हो सकती। वह समझता है कि जो कुछ वह सीख चुका है, उससे अधिक और कोई कुछ जानता ही नहीं। वह अपनी गलती न स्वीकार करने की सदैव कोशिश करता है। अभिमानी के साथ सामाजिक सम्बन्ध अधिक समय तक नहीं टिकते हैं।

अभिमान का सर्वनाश निश्चित है। रावण, कंस, दुर्योधन, भुट्टो, सद्दाम हुसैन के उदाहरण हमारे सामने हैं।

अहंकार को प्रारम्भिक अवस्था में ही काबू कर लेना चाहिए। बाद में यह बेकाबू हो जाता है।

नम्रता, परोपकार, सत्संग, वैदिक ज्ञान, ईश्वर चिन्तन व ध्यान से अहंकार पर विजय पायी जा सकती है।

साभार-पुस्तक - चुल्लू भर पानी एवं जंजीरे, लेखक - डॉ. सुभाष अभिलाषी

तीसरा मानसिक रोग व उसका निवारण

मोह

तीसरे मानसिक रोग / दु:ख का नाम मोह है। यह एक विष है-चखने में चीनी जैसा मीठा लेकिन परिणाम में घातक। मोहवश व्यक्ति सच को सच नहीं कहता, न्यायवृत्ति का पालन नहीं करता और हर मौके पर पापकर्म अथवा अपराध करने को तैयार रहता है।

मोहवश व्यक्ति पापकर्म तो कर लेता है लेकिन अन्त में लाभार्थी भी (सन्तान आदि) उसका साथ छोड़ देते हैं।

मोहवश में किये गलत कार्यों का दंड प्रथम तो उसे समाज ही दे देता है। यदि चालाकी से ''समाज दंड'' से वह बच भी जाये तो ईश्वरीय कर्म व्यवस्था के अनुसार उसे दंड इस योनि में अथवा मरने के बाद (नीच योनियों में जाकर) दु:ख के रूप में अवश्य ही मिलता है। कैकेई का मोह, धृतराष्ट्र का मोह व उनके परिणाम आदि उदाहरण समाज के सामने हैं।

वर्तमान में भी बहुत से राजनीतिज्ञों के पुत्रों ने अपने पिता के उच्चासन का अनुचित लाभ उठाया और पिता मोहवश कुछ न बोल सका। परिणामस्वरूप उसकी अपनी छवि भी खराब हो गई। ऐसे व्यक्ति जीवन के अन्तिम पड़ाव में डिप्रेशन व अशान्ति से ग्रस्त रहते हैं।

यम-नियम का पालन करने व वैदिक कर्म व्यवस्था का पूर्ण ज्ञान होने पर हम इस रोग से बच सकते हैं।

साभार-पुस्तक - चुल्लू भर पानी, लेखक - डॉ. सुभाष अभिलाषी

चौथा मानसिक रोग व उसका निवारण

द्वेष

द्वेष का साधारण अर्थ है-वैर का भाव, नफरत का भाव, जलन का भाव, चिढ़ने का भाव। द्वेष मनुष्य को अन्दर ही अन्दर खाता रहता है। जो व्यक्ति दूसरे की उन्नति देखकर द्वेष की अग्नि में जलने लग जाता है, वह धीरे-धीरे दानव होता जाता है। मेरा मित्र या रिश्तेदार, जो कि मुझसे बहुत पीछे था, ने कार ले ली, कोठी बना ली, कारोबार मुझसे चौगुना कर लिया, उसके बच्चे अधिक पढ़-लिख गये-मैं पीछे रह गया। ऐसी सोच जब मनुष्य को खाने लगे तो समझ लो कि उसकी नाव ऐसे मंझदार में जा रही है जहाँ डूबने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं। ऐसे व्यक्ति में पाप कर्म करने की वृत्ति भी कभी-कभी उत्पन्न होने लगती है।

दूसरों की उन्नति में प्रसन्न होने वाला व्यक्ति दु:खी नहीं होता, अशान्त नहीं होता-वह देवता बन जाता है।

जो व्यक्ति दूसरों को बढ़ता देखकर स्वयं परिश्रम करके उनके बराबर होने का प्रयत्न करता है। वह मानव है।

द्वेष की बजाय स्पर्धा करो - One should not feel jealous. One should feel Envy, and Believe in Healthy competition.

कठिन परिश्रम, अपने पुण्य में विश्वास, सन्तोष की भावना एवं ध्यान द्वारा इस द्वेष रूपी विष पर अवश्य ही विजय प्राप्त की जा सकती है।

आइये, आज से ही द्वेष मुक्त होने का संकल्प करें।

साभार-पुस्तक - चुल्लू भर पानी, लेखक - डॉ. सुभाष अभिलाषी

पाँचवा मानसिक रोग व उसका निवारण

कामवासना

कामवासना का अर्थ है विषय भोग (संभोग) की अति कामना। यह भी एक तरह का मानसिक रोग / दु:ख है। कामुकता का विष सरलता से दूर नहीं होता। कामुक व्यक्ति की भोगेच्छा जितनी बढ़ती जाती है, वह उतना अधिक प्रयत्न इसकी तृप्ति के लिए करता है। यदि ऐसा व्यक्ति पथ भ्रष्ट न भी हो तो भी कामुक्ता पर संयम न होने के कारण अपनी पत्नी के साथ अति संभोग करता है। फलस्वरूप उसका व उसकी पत्नी का स्वास्थ्य गिरता जाता है।

जननेन्द्रिय का मुख्य कार्य मूत्र त्याग व गौण कार्य प्रजनन है। आजकल लोग प्रजनन का लक्ष्य (वंश बढ़ाने के लिए) भूलकर जननेन्द्रिय शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं। प्रकृति ऐसे व्यक्ति को माफ नहीं करती है।

कामवासना के कारण हैं-अपनी संस्कृति की अवहेलना, मांस-मदिरा का प्रयोग, टी.वी., इंटरनेट का दुरुपयोग, यम-नियम व ब्रह्मचर्य का ज्ञान व पालन न करना।

इसकी हानियाँ हैं-घर में अशान्ति होना, समाज में निन्दा होना, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक उन्नति का रूकना, बुढ़ापा दु:खमय होना एवं मृत्यु उपरान्त अनेक योनियों में भटकना।

सात्विक भोजन, यम-नियम, ब्रह्मचर्य का पालन व सुसंगति द्वारा इस रोग पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

साभार-पुस्तक - जंजीरे, लेखक - डॉ. सुभाष अभिलाषी

छठा मानसिक रोग व उसका निवारण

क्रोध

क्रोध भी एक मानसिक रोग है। इसकी उत्पत्ति अधिकतर लोभ से होती है। परदोष दर्शन से इसमें वृद्धि होती है। यह क्रोधी के लिए एवं जिस पर क्रोध किया जा रहा है-दोनों के लिए दु:खदायक है। क्रोध में बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। क्रोधी अपनी सुध खो देता है। क्रोध में लिया गया निर्णय या तो गलत होता है अथवा पूर्णतया: सही नहीं होता।

क्रोधी व्यक्ति अपने सामाजिक सम्बन्ध धीरे-धीरे खराब कर लेता है। अपने स्वास्थ्य व क्रोधित व्यक्ति के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाता रहता है। फलस्वरूप उच्च रक्तचाप, हृदय व शुगर जैसी बीमारियाँ घेर लेती हैं।

क्रोध आने के मुख्य कारण हैं - लोभ, ईर्ष्या, तनाव, अहंकार व अपनी अपेक्षाओं/इच्छाओं की पूर्ति न होना।

यम-नियम का पालन (मुख्य रूप से अपरिग्रह, सन्तोष, स्वाध्याय (ऋषिकृत ग्रन्थ), तप, ईश्वर प्रणिधान), ध्यान, योग, सात्विक भोजन व सकारात्मक सोच से क्रोध पर काबू पाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त क्रोध के समय ठंडा पानी पीना चाहिये। क्रोध वाला स्थान तुरन्त छोड़ देना चाहिये। जीवनचर्या में संगीत व हास्य को स्थान देना चाहिये।

यम-नियम को सरल व्याख्या के लिए पढ़ें- **पुस्तक: योग चिन्तन - जप एवं ध्यान www. manavsanskar.com से नि:शुल्क download करें।**

साभार-पुस्तक - चुल्लू भर पानी, लेखक - डॉ. सुभाष अभिलाषी

सातवाँ मानसिक रोग व उसका निवारण

लोभ

किसी भी भौतिक वस्तु के प्रति मोह हो जाने पर अधिक से अधिक प्राप्त करने की मन की कामना को लोभ कहते हैं। सभी मानसिक रोग - काम, क्रोध, भय, अहंकार, द्वेष आदि या तो लोभ से पैदा होते हैं या लोभ द्वारा प्रफुल्लित होते हैं।

वर्तमान और भविष्य की उचित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एवं जीवन चलाने के लिए सीमित रूप में लोभ करना आवश्यक है। धन कमाना आवश्यक है। कार्य करना आवश्यक है लेकिन अवैध रूप से धन कमाना सर्वदा पाप है।

लोभी व्यक्ति की बुद्धि खराब हो जाती है। विवेकहीन हो जाती है। ऐसा व्यक्ति हर प्रकार का अपराध करने को (धन एकत्रित करने हेतु) तैयार रहता है। अपराध करता है, दंड भोगता है। समाज में घोर निन्दा का पात्र बनता है। आजकल बहुत से लोगों व नेताओं के उदाहरण समाज के सामने हैं।

कर्मफल व्यवस्था का वैदिक ज्ञान एवं यम-नियम के जीवन में पालन करने से इस लोभ रूपी महान विकार से नि:सन्देह बचा जा सकता है।

मदन लाल अनेजा- प्रधान, मानव संस्कार फाउन्डेशन
Website : www.manavsanskar.com

अज्ञानता सबसे बड़ा अभिशाप

''अज्ञानी रहने से जन्म न लेना ही अच्छा है क्योंकि अज्ञान ही समस्त विपत्तियों का मूल है'' -प्लेटो।

''प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये''

- महर्षि दयानन्द सरस्वती

सज्जनो! समस्त विकृतियों, बुराइयों, शारीरिक एवं मानसिक अस्वस्थता, सामाजिक कुरीतियों, आर्थिक व आध्यात्मिक शोषण का कारण मुख्य रूप से अज्ञान और अविद्या ही है। इसीलिए कुछ लोग जीवन की समस्त सुविधायें प्राप्त होने पर भी दु:खी व अशान्त देखे जाते हैं जबकि कुछ व्यक्ति साधनों व धन के अभाव में भी, सुख शान्ति और आनन्द का अनुभव करते हैं।

मित्रो! इन लेखों में **कर्म फल विषय के वैदिक ज्ञान को** सरल भाषा में आपके साथ साझा करने का प्रयत्न किया जायेगा, ताकि सभी भाई बहिन (In India and abroad) शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक उन्नति पूर्ण रूप से कर सकें। अन्ध विश्वास और समाज में फैली भ्रान्तियों से बच सकें।

ईश्वर ने केवल मनुष्य को ही शुभ कर्म व ज्ञान दान की शक्ति दी है। किसी अन्य योनि के प्राणी को नहीं। इसलिए इस अवसर को न गंवाएँ। कर्मफल सम्बन्धी वैदिक ज्ञान को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाकर उनकी अज्ञानता दूर करने में सहायक बनें और परमपिता परमेश्वर का आशीर्वाद प्राप्त करें।

नोट - इन लेखों में सभी ज्ञान वेदानुसार है। समाज हित में है। इससे सहमत होना या ना होना अथवा पालन करना या न करना-आपका अधिकार/निर्णय है। मेरा उद्देश्य आप तक सरल भाषा में पहुंचाना है।

कर्मफल व्यवस्था का वैदिक स्वरूप

1. यश-अपयश कर्मों का खेल है।

आजकल अधिकतर मनुष्य यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि उनका भविष्य कैसा होगा, उनका बच्चा अमीर बनेगा या गरीब, कितनी विद्या प्राप्त करेगा, कैसा कारोबार करेगा, कितनी आयु पायेगा आदि-आदि। इस जिज्ञासा को तृप्त करने के लिए वे ज्योतिषियों, तान्त्रिकों, पण्डितों और तिगड़मी ठगों के पास जाते हैं। यह ज्योतिषी आदि ऐसे व्यक्तियों को (जिनको कर्मव्यवस्था का ज्ञान नहीं है) वहम में डालकर, भय दिखाकर, मन घढ़न्त भयंकर होनी को टालने का वादा करके, उनको ठगते रहते हैं, उनकी अज्ञानता का पूर्ण रूप से अनुचित लाभ उठाते हैं।

वास्तव में यह सुख-दुःख, हानि-लाभ, उतार-चढ़ाव, संयोग-वियोग-सब कर्मों का खेल है। **कर्मों के मामले में केवल ईश्वर और कर्मकर्ता ही दो पक्ष हैं। तीसरे का इसमें कोई दखल नहीं।**

कर्मों का विषय गूढ़ और गम्भीर है। फिर भी कर्म विषय पर जो ज्ञान आर्ष ग्रन्थों (वेद, दर्शन, उपनिषद् आदि) में लिखा है उसी ज्ञान को आपके साथ, सरल भाषा में, बांटने का प्रयास किया जायेगा ताकि लोग अन्धविश्वास से मुक्ति पा सकें, कर्मशील बन सकें, अपनी मेहनत की कमाई को नष्ट न कर सकें और वेदों की शिक्षाओं का पालन कर सकें।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

2. पहले सोचें-फिर कर्म करें

कर्म शरीर, मन, वाणी-तीनों से किये जाते हैं। इनके सदुपयोग से हम देव योनि प्राप्त कर सकते हैं और दुरुपयोग से (नीच कर्म, पाप आदि करना) से मृत्यु के उपरान्त, पशु, पक्षी, कीट, पतंग या दरिद्र मानव जीवन में जा सकते हैं। हमारे द्वारा किये गये कर्म तीन श्रेणियों में बंट जाते हैं :-

(1) **क्रियामान कर्म :** हम इस जन्म में आकर जो कर्म करते हैं वे क्रियामान कर्म हैं। इनमें से कुछ कर्म तो मनुष्य प्रारब्ध कर्म (पिछले जन्मों के संचित कर्मों का फल) भोगने के लिए करता है और कुछ नये कर्म करता है। नये कर्मों द्वारा पैदा हुए संस्कार/वासनाएँ हमारे चित्त में, भविष्य में फल देने के लिए इकट्ठा हो जाते हैं। इनको संचित कर्मों का कोष कहते हैं।

समय आने पर (फल देने के लिए) कुछ क्रियमान कर्म संचित से प्रारब्ध में बदल जाते हैं।

(2) **संचित कर्म :** यह पिछले जन्मों में किये गये कर्मों (जिनका फल अभी मिलना है) का बकाया कोष है। आप इन्हें कर्मों के बैंक में जमा अपना कर्मकोश समझ सकते हैं। आपके द्वारा किये ये क्रियामान कर्म इस कर्म कोश में (फल देने के लिए) पंक्ति में लग जाते हैं। आपकी भविष्य की योनियाँ इन्हीं कर्मों से निश्चित होती हैं। अत: अपना भविष्य आप स्वयं लिख सकते हैं।

(3) **प्रारब्ध कर्म :** ये कर्म हमारे संचित कोश में फल भोगने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। फल शुरू होने पर यह प्रारब्ध कर्म बन जाते हैं। इनका फल सुख दु:ख के रूप में भोगना ही है। इनके भोग फल पर हमारा अधिकार नहीं है।

प्रारब्धानुसार ही हमें वंश, धन, योनि, सन्तान, सुख-दु:ख आदि मिलते हैं। इसके लिए ग्रह दोष, नक्षत्र दोष आदि मानना व उनका उपाय करना अन्ध विश्वास है।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

3. अगला शरीर (अच्छा/बुरा) - आपके हाथ में है।

यह संसार कर्म क्षेत्र है। सुख-दु:ख, अमीरी-गरीबी, यश-अपयश, विद्या, सांसारिक वस्तुएँ आदि सब कर्माधीन हैं। परमात्मा ने जीवों को कर्मों का फल भोगने अथवा/ और मोक्ष प्राप्त करने के लिए यह सुन्दर संसार रचा है।

आपका आज तो आज, आपके कल का निर्माण भी आपके वर्तमान कर्म ही करेंगे, बेशक जो कल बीत गया उस पर अब आपका जोर नहीं रहा। लेकिन भविष्य में कर्म करने में आप पूर्णतया: स्वतंत्र हैं। आप जैसा शरीर (योनि) आगे पाना चाहें, तदानुसार पुण्य या पाप कर्म करके पा सकते हैं।

परमात्मा न किसी के पाप लेता है और न ही पुण्य। ईश्वर पाप भी क्षमा नहीं करता है। न्यायकारी है। ये पिछले कर्म ही थे कि पुरुषोत्तम राम को सिंहासन के स्थान पर वनवास मिला। योगेश्वर कृष्ण का जन्म काल कोठरी में हुआ और युधिष्ठिर वन-वन भटके। आपने समाज में भी ऐसे उदाहरण देखे होंगे जब कोई व्यक्ति निर्धन से धनवान या अमीर से फकीर बन गया, केवल अपने कर्मों के कारण। आप आदरणीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की जीवन यात्रा का भी चिंतन कर सकते हैं।

आइये! सत्य कर्म करते हुए पाप व नीच कर्मों से बचते हुए, अपना जीवन सार्थक करें, और नीच योनियों से भी बचें।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा, आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

कर्म सम्बन्धी वैदिक मान्यतायें

आजकल समाज में अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं जैसे तीर्थ स्थान से, दान देने से, ग्रहों की पूजा से, दरगाह पर चद्दर चढ़ाने से पाप मिट जाते हैं अथवा मन्नत पूरी हो जाती है।

समाज में विद्यमान कोई कानून, नियम अथवा प्रथा सही है या नहीं, इसका निर्णय उस देश का संविधान करता है। अतः जिस व्यक्ति को देश के संविधान का पूर्ण व ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है, और ऐसा व्यक्ति उस कानून, नियम अथवा प्रथा पर कोई विचार देता है तो ऐसे विचारों की समीक्षा संविधान के अनुसार करनी चाहिये। यदि ऐसे विचार संविधान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते तो उनको मान्यता देना मूर्खता है।

ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में यदि कोई मान्यता या प्रथा धर्म के संविधान ''वेद'' के अनुसार नहीं है तो उसे हमें मान्यता देने से बचना चाहिये। आर्ष ग्रन्थ (वेद दर्शन, उपनिषद आदि) का पूर्ण व सही ज्ञान न होने के कारण कुछ गुरु एवं चालाक मनुष्य लोगों की सादगी, अज्ञानता व वहमी स्वभाव की कमजोरी का अनुचित लाभ उठा रहे हैं और उनका शोषण करते रहते हैं।

अगले लेखों में, भ्रान्तियों का वर्णन करने से पहले, नौ वैदिक मान्यताओं का उल्लेख किया जायेगा। कुछ व्यक्ति वेद भी पढ़ना नहीं चाहते और वैदिक मान्यताओं को भी महत्त्व नहीं देते हैं। यह उनका व्यक्तिगत दृष्टिकोण है। ईश्वर उनकी सहायता करे।

वैदिक मान्यता नं0 1

(1) कर्म कर्ता ही भोगता है - अन्य नहीं।

ईश्वरीय व्यवस्था का अटल नियम है कि जो कर्म करेगा, वही उसका दु:ख सुख रूपी फल पायेगा, दूसरा नहीं।

कुटुम्ब में एक व्यक्ति द्वारा पाप करके धन से सारे परिवार का निर्वाह करने पर पाप केवल करने वाले कर्ता को ही लगता है।

मनुष्य बुद्धिमान हो, विद्वान हो, पण्डित हो, मूर्ख हो या शूरवीर हो, उसने पूर्व जन्म में जैसा शुभ या अशुभ कर्म किया है उसका वैसा ही फल उसे ही भोगना पड़ता है।

एकः प्रजायते अन्वुरेक एव प्रलीयते।

एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्टकृतम्।। (मनु 4/240)

वाल्मीकि रामायण (3/63/4) में श्री राम स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे अपने पूर्व कर्मों का फल भोग रहे हैं। आदरणीय सीता माता भी अपने भाग्य में विषमता का कारण पिछले जन्मों के पाप मानती हैं (वाल्मीकि रा0 113/36)। पिछले जन्मों के पापों के कारण ही गांधारी ने अपना वंश खो दिया (महाभारत)। **अतः दु:ख आने पर ग्रह दोष, नक्षत्र दोष आदि मानना व उनके उपाय करना या करवाना केवल अन्ध विश्वास है। पैसे और समय को बरबाद करना है। इसके लिए परिश्रम और ईश्वर से दु:ख सहने की शक्ति की प्रार्थना करनी चाहिये।**

करने से पहले विचार बन्दे, फिर कुछ नहीं हो सकेगा।
शुभ कर्म से हंसेगा तू, दुष्कर्म से केवल रो सकेगा।।

आइये शुभ कर्म करके अपना जीवन सफल बनायें।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

आरोह तमसो ज्योतिः अज्ञान दूर कर ज्ञान प्राप्त करें

(2) दूसरे के कर्मों का प्रभाव और समाज दंड एवं कर्मफल में अन्तर

सामाजिक दंड समाज में अपराध करने पर सरकार द्वारा व्यवस्था बनाने हेतु दिया जाता है। कर्मफल पाप करने वाले को ईश्वर द्वारा दिया जाता है। सामाजिक दंड से व्यक्ति चालाकी से या मृत्यु होने पर बच सकता है कर्मफल से नहीं। अतः दोनों में अन्तर है।

मान लो पिता ने चोरी की और पकड़ा गया तो सरकारी दंड बाप को ही मिलेगा-बेटे, बेटी, पत्नी को नहीं। इस पाप का फल भी केवल बाप को इस योनि या अगले जन्मों में समय आने पर ईश्वर द्वारा अवश्य दिया जायेगा।

पिता या घर के किसी के दुष्कर्म का प्रभाव परिवार पर भी पड़ता है। लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उनसे सम्बन्ध रखने में तैयार नहीं होते। **इसका एक उपाय यह भी है (यदि संभव हो) कि परिवार को स्थान बदल लेना चाहिये।**

सरकार या समाज के प्रतिनिधियों (नेताओं) के कर्मों का अच्छा या बुरा असर भी नागरिकों पर पड़ता है क्योंकि उनके निर्णय पूरे समूह की ओर से किये गये माने जाते हैं। इनका दंड भी समाज (समूह) को थोड़े या लम्बे समय के लिए भोगना पड़ता है। (उदाहरण-देश विभाजन के समय हुई गलतियाँ) परन्तु कर्मफल समय आने पर खोटी नीयत से कर्म करने वाले नेता य समाज मुखिया को ही भुगतना पड़ेगा। इसलिए चरित्रवान एवं योग्य नेता को ही समाज हित में चुनना चाहिये।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

आरोह तमसो ज्योतिः आओ! अज्ञान दूर कर ज्ञान प्राप्त करें

(3) कर्म फल से कोई बच नहीं सकता

समाज में दो भ्रान्तियाँ हैं-(1) क्या अपराध का दंड भोग लेने पर ईश्वर भी उसके लिए दुःख देता है? क्या मन व वाणी द्वारा किये गये पाप/अपराध का फल भी ईश्वर देता है? दोनों का उत्तर है हाँ, अवश्य देता है।

दंड किसी देश के कानून को तोड़ने के लिए, समाज में व्यवस्था बनाने हेतु सरकार द्वारा दिया जाता है। मनुष्य सामाजिक दंड से अपनी चालाकी, झूठी गवाही, कानून की कलाबाजी, धन धान्य, न्यायाधीश के अपूर्ण ज्ञान या थोड़ा जुर्माना देकर बच सकता है। मृत्यु की परिस्थिति में भी बच जाता।

कर्म फल मन, वाणी, शरीर-प्रत्येक के द्वारा किये गये पाप अथवा पुण्य के लिए ईश्वर देता है। ईश्वर के न्याय में समानता है। वह न्यायकारी है। ईश्वर का महान् कम्प्यूटर हमारे चित्त में लगा हुआ है। मृत्यु के उपरान्त सूक्ष्म शरीर के द्वारा सदैव आत्मा के साथ रहता है। यह कम्प्यूटर सब कुछ रिकार्ड करता रहता है। अतः ईश्वर को साक्ष्य की जरूरत नहीं पड़ती है। ईश्वर रिश्वत, सिफारिश नहीं मानता, किसी के भी प्रभाव-गुरु आदि में नहीं आता, किसी भी उपाय-पूजा, हवन, टोटके आदि को नहीं मानता। यदि वह किसी गुरु के प्रभाव में आ जाये या पूजा आदि को महत्त्व देने लगे तो पक्षपाती व अन्यायकारी बन जायेगा जबकि ये गुण उसके नहीं हैं।

ईश्वर मन व वाणी द्वारा किये गये पापों का कुछ दंड तो मानसिक रोगों के रूप में यहीं पर दे देता है। बाकी सभी पाप कर्मों का उचित दंड (दुःख) देकर या छोटी योनियों में भेजकर हमारे कुसंस्कारों को धो देता है ताकि दंड भोगने के पश्चात, निर्मल बुद्धि के साथ, हम पुनः मनुष्य योनि प्राप्त कर सकें। अच्छे कर्म कर सकें।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

आरोह तमसो ज्योतिः अज्ञान दूर कर ज्ञान प्राप्त करें

(4) पाप और पुण्य : दो अलग-अलग खाते

ईश्वर की कर्मव्यवस्था के अनुसार मन, वाणी या शरीर द्वारा किये गये सभी पाप और पुण्य कर्मों का कभी भी आपस में समायोजन (Adjustment) नहीं होता है। पाप और पुण्य कर्मों का आपस में जोड़ घटा (Plus/Minus) नहीं होता। पाप कर्म और पुण्य कर्म-दोनों का फल ईश्वर अलग-अलग देता है। ऐसी व्यवस्था नहीं है कि मनुष्य के 10 पुण्यों में से दो पाप कम कर दिये जायें और शेष आठ पुण्य कर्मों का फल देकर छुट्टी कर दी जाये। इसके विपरीत, दो पुण्य कर्मों का फल न दिया जाए और दस के बजाय केवल आठ पाप कर्मों का दण्ड ही दिया जाए।

ईश्वर न्यायकारी है। वह पुण्य के फल ''सुख'' से किसी को भी वंचित नहीं करता है। यदि ईश्वर पाप और पुण्य कर्मों का समायोजन करने लग जाए तो ज्यादा पुण्य करने वालों को तो ''दुःख'' का अनुभव होगा ही नहीं। ऐसे लोग अहंकारवश पथभ्रष्ट होने लग जायेंगे। इसी प्रकार अधिक पाप करने वाला व्यक्ति सदैव दुःख में ही रहेगा। वह अपने शुभ कर्म का फल कभी नहीं भोग पायेगा जो कि न्याय संगत नहीं होगा।

नोट :- उपासना, यज्ञ (हवन), ध्यान, परोपकार करने पर ईश्वर हमें दुःख सहने की शक्ति देता है। भविष्य में पाप कर्म न करने की प्रेरणा देता है। शुभ कर्मों के लिए प्रोत्साहित करता है। मानसिक रोगों (भय, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि) से मुक्ति प्राप्त करने में सहायता करता है-मदन लाल अनेजा

कर्म से पहले सोचिए, कर्म का परिणाम।
पापों से बच न पाएगा, मानव ऐसा जान।।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

आरोह तमसो ज्योतिः अज्ञान दूर कर ज्ञान प्राप्त करें

(5) कर्मों के आगे ईश्वर भी बेबस

ईश्वर को कुप्रबन्ध पसन्द नहीं है। कर्मानुसार फल देना ईश्वर का अटल नियम है। वह अपने किसी भी नियम में-किसी भी प्रकार की-किसी के लिए भी-कभी भी-ढील नहीं देता है। अपने अटल नियमों के कारण ईश्वर अपनी व्यवस्था में पूणतयः बंधा है।

ईश्वर यदि अपने ही द्वारा बनायी गई कर्म व्यवस्था सम्बन्धी एवं अन्य नियमों को तोड़ने लगे तो उसकी सारी व्यवस्थाएं चरमरा जायेंगी और विश्व बे-लगाम घोड़ा बन जायेगा।

ईश्वर कर्म फल में किसी भी प्रकार की रियायत नहीं देता है अन्यथा उसका दरबार भी सरकारी या सांसारिक कार्यालय बन जायेगा। कोई कर्मों में रियायत अथवा आरक्षण मांगेगा, कोई आयु में, कोई दुःख में और कोई धन दौलत में आदि-आदि। परिणाम स्वरूप मनुष्य शुभ व अच्छे कर्म करने पर ध्यान देने के बजाय पाप कर्म करने में अधिक रुचि लेगा। और, निसन्देह यदि ऐसा होता है तो मनुष्य की ईश्वर के प्रति आस्था व श्रद्धा सदा के लिए समाप्त हो जायेगी। ईश्वर निश्चय ही, अपने प्राणियों, पुत्रों व पुत्रियों के लिए, ऐसी कुव्यवस्था की कल्पना भी नहीं कर सकता।

आपो अद्य अन्व चारिषम रसेन समगस्मीह।
पयस्वान् अग्ने आ गीह तं मा सं सृज वर्चसा।।

(ऋग्वेद मंत्र - 10/9/9)

भावार्थ :- सभी प्राणियों को उनके कर्मों का फल इस जन्म में या अगले जन्म में अवश्य प्राप्त होता है।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

आरोह तमसो ज्योतिः अज्ञान दूर कर ज्ञान प्राप्त करें

(6) फल दाता केवल ईश्वर ही

कर्मों का फल ईश्वर के आधीन है। वेदों, उपनिषदों एवं आर्ष ग्रन्थो के अनुसार ईश्वर सर्व-शक्तिमान है। स्वयं दंड देता है। **किसी दूसरे व्यक्ति, सत्ता, ग्रह, नक्षत्र, देवता आदि से न तो दंड दिलवाता है और न ही उनकी सिफारिश मानता है। वास्तव में जड़ देवता सिफारिश करने योग्य भी नहीं हैं।**

मनुष्य को स्वतन्त्रता पूर्वक कर्म करने का पूर्ण अधिकार है। उसे इस अधिकार से वंचित रखने पर सब पुण्य और पाप कर्म-अच्छे अथवा बुरे-का श्रेय ईश्वर को जायेगा और मनुष्य को किसी भी प्रकार से दोषी मानना न्यायसंगत नहीं होगा। ऐसी परिस्थिति में सरकार द्वारा भी दोषी/अपराधी व्यक्ति को दंड देने का अधिकार नहीं होना चाहिये। लेकिन यह संभव नहीं है। सब काम भगवान के जिम्मे डालना और कर्म कर्ता का बरी हो जाना कर्म व्यवस्था के नियमों के विरुद्ध है। समाज हित में बिल्कुल नहीं है।

ईश्वर मनुष्य को गलत कार्य करने से पूर्व आत्मा के द्वारा हृदय में भय, डर आदि के साथ-साथ बुरे कर्म न करने का संकेत निरन्तर देता रहता है और शुभ काम करने पर प्रेरणा और प्रसन्नता का भाव देता है। यदि ईश्वर शुभ या पाप कर्म खुद करवायेगा तो ऐसे संदेशों की कोई सार्थकता नहीं रह जाती है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (गीता 2/47)

भावार्थ :- कर्म करने का अधिकार मनुष्य का है जबकि फल देने का अधिकार ईश्वर का है।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

(7) समान कर्मों का समान दण्ड जरूरी नहीं
(विशेष परिस्थितियों में)

1. पांच वर्ष तक के बच्चे के कर्म :-

मान लो एक 5 वर्ष के बच्चे ने खेलते-खेलते अपने पिता व माता को चाकू मार दिया। खून निकल आया। ऐसा ही कर्म चोर ने चोरी के दौरान किया। इन दोनों घटनाओं का फल एक सा नहीं मिलेगा। चोर को सख्त और बच्चे को बहुत कम अथवा कोई दण्ड नहीं मिलेगा।

कारण - चोर ने दुर्भावना से और बच्चे ने भोलेपन में चाकू मारा।

2. अनजाने में किये कर्म/कुकर्म का फल जान-बूझकर किये गये कर्म / कुकर्म की अपेक्षा कम मिलेगा।

मान लो कुछ आतंकियों ने गांव वाले मार दिये। गांव वालों ने भी मुठभेड़ में 2 आतंकी ढेर कर दिये लेकिन गांव का एक व्यक्ति जख्मी हो गया गांव वालों द्वारा। आतंकियों को कठोर दंड और गांव वालों को मामूली दंड भोगना पड़ेगा।

3. भूल से किये गये पाप और जान-बूझकर किये गये पाप का फल भी अलग-अलग होता है।

मान लो कर्मचारी 'ए' बगैर घूस के कोई काम नहीं करता। कर्मचारी 'बी' कभी रिश्वत नहीं लेता। कर्मचारी 'बी' की जेब में एक दिन भूल से 20/- रुपये चले गये। उसे इसका पता नहीं चला। यह भूलचूक सरकारी खजाने में भी दफन हो गई। इस उदाहरण में कर्मचारी 'ए' को अधिक और कर्मचारी 'बी' को बहुत कम दण्ड मिलेगा।

4. दूसरे की अधीनता के कारण किये गये कुकर्मों का फल कर्ता को कम और आदेशकर्ता को अधिक भोगना पड़ता है - क्योंकि प्रभु अन्तर्यामी हैं, सर्वान्तर्यामी हैं। असली कुकर्मी को जानते हैं। इस श्रेणी में डान, सुपारीदाता, कुछ राजनेता, कुछ अधिकारी, माफिया गैंग आदि आते हैं।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

8. कुछ कर्मों का फल नहीं

वेदों के अनुसार मनुष्य द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों में किये गये कर्मों का फल दु:ख, सुख रूप में उसको नहीं मिलता है।

(1) **अबोध (नासमझ) बच्चे के द्वारा किये गये कर्म**

(2) **बेहोशी में किये गये कर्म** (केवल मानसिक रोग स्थिति में)

(3) **कर्तापन के अभिमान के बिना किये गये कर्म**-उदाहरण -

(क) जज द्वारा अपराधी को (कर्तव्यानुसार) फांसी की सजा देना और

(ख) सेना द्वारा युद्ध भूमि में दुश्मन के सैनिकों एवं शहरी व ग्रामीण को हताहत करना।

उपरोक्त कर्म ''मैं ही कर्ता हूँ'' इस अभिमान को छोड़कर किये जाते हैं। अत: सर्वशक्तिमान ईश्वर ऐसे कर्मों को दंडनीय नहीं बनाता है।

(4) **समष्टि (सर्वलोक) कल्याण हेतु किये गये कर्म** उदाहरण

(क) योगीराज श्रीकृष्ण ने महाभारत में युधिष्ठिर से जबरदस्ती आधा झूठ बुलवाया ताकि द्रोणाचार्य को मारकर हजारों सैनिकों को हताहत होने से बचाया जा सके। कल्याणार्थ झूठ बोलना पाप की श्रेणी में नहीं आता है।

(ख) योगीराज कृष्ण ने धर्म रक्षा के लिए जयद्रथ को मरवाने के लिए अर्जुन को अधर्म का सहारा लेने की प्रेरणा दी।

(ग) इसी प्रकार धर्म रक्षा हेतु श्री कृष्ण ने कर्ण और दुर्योधन को मरवाने से पहले उनके द्वारा किये गये कुकर्मों से उनको अवगत कराया और महाभारत का भीषण युद्ध समाप्त हुआ।

उपरोक्त चारों उदाहरणों में कर्म करने की प्रेरणा देने में श्रीकृष्ण का अपना कोई स्वार्थ नहीं था सिवाय सत्य और धर्म की स्थापना करना।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

आरोह तमसो ज्योतिः आओ, अज्ञान दूर कर ज्ञान प्राप्त करें

9. क्या कर्मों से छुटकारा पाया जा सकता है-नहीं।

हाँ एक उपाय है- यह लम्बा, जोखिम भरा, और बहुत कठिन है। उपाय निम्न है-प्रयत्न करके देखें -

(क) यमों का पालन करें - यह सामाजिक नियम हैं। गुण, कर्म, स्वभाव, वाणी व आत्मा से अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (आवश्यकता से अधिक वस्तुओं व धन आदि का संग्रह न करना) का पूर्णतया: पालन करें।

(ख) नियमों का पालन करें - यह व्यक्तिगत नियम हैं। शौच (शरीर और मन की शुद्धि), संतोष (संतुष्ट और प्रसन्न रहना), तप (स्वयं से अनुशषित रहना) स्वाध्याय (आत्मचिंतन व वेदों का स्वाध्याय करना), ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर के प्रति पूर्ण श्रद्धा एवं समर्पण) को अपने जीवन का अनिवार्य हिस्सा बनायें।

(ग) प्रतिदिन योग दर्शन के अनुसार निराकार ईश्वर का ध्यान करें।

(घ) परोपकार करें - अपनी शारीरिक शक्ति के अनुसार श्रम दान और आर्थिक स्थिति के अनुसार धन व वस्तुओं का दान करते रहें।

उपरोक्त विधि के अनुसार आपका मन व बुद्धि निर्मल हो जायेगी। इस अवस्था पर पहुँचकर आपका भौतिक शरीर केवल प्रारब्ध कर्म भोगने के लिए चालू रहता है। आपके संचित कर्म योग अग्नि में जल जाते हैं। प्रारब्ध कर्म भोगने के बाद आपकी आत्मा मोक्ष प्राप्त कर लेती है। वेदों के अनुसार मोक्ष प्राप्त करने का यही तरीका है।

नोट - इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते आपने जो कठिनाईयाँ और बाधाओं का सामना किया, अभाव सहन किये- वे भी आपके पापों के दंड ही माने जायेंगे। आपने निम्न योनियों में न जाकर एक बार में ही सब कष्ट-दण्ड भोग लिए। बहरहाल, पाप बिना दण्ड दिये नहीं छोड़ता है।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

आरोह तमसो ज्योतिः आओ अज्ञान दूर कर ज्ञान प्राप्त करें

-: भ्रान्तियाँ :-

(क) पाप कर्म कभी भी क्षमा नहीं होते हैं।

कर्मों के बारे में पहली भ्रान्ति यह है कि सांसारिक उपाय करके अर्थात् तीर्थ स्थान, दान, जप, यज्ञ, उपासना, पूजा आदि करने के बाद ईश्वर कुकर्मों के दंड को क्षमा कर देता है। यह बिल्कुल असत्य है।

उपरोक्त क्रियाओं को सच्चे दिल से करने से पाप क्षमा नहीं होते हैं। इसका फल यह है कि ईश्वर हमें यम-नियम पालन करने की प्रेरणा और शक्ति देता है। यम-नियमों का पालन शुरू करने पर हमारा हृदय व अन्तःकरण शुद्धता की ओर बढ़ने लगता है। हमारा भविष्य में पाप कर्म न करने का संकल्प दृढ़ होता जाता है। और हम आने वाले समय में पाप कर्म करने की प्रवृत्ति से बचते जाते हैं। यदि उपरोक्त क्रियायें वेदानुसार की जायें तो पूर्ण लाभ मिलता है।

पहले किये जा चुके कुकर्मों पर या उनके दण्ड पर इन क्रियाओं-तीर्थ स्थान, दान, जप, हवन, उपासना, पूजा आदि का कोई भी-किसी प्रकार का भी-कम या अधिक-असर नहीं पड़ता है। आप स्वयं सोचें यदि पाप क्षमा होने लगेंगे तो लोग पुण्य और आदर्श जीवन से हटने लग जायेगे और ईश्वर ऐसा कभी नहीं चाहेगा।

आइये! सोच समझकर कर्म करने का संकल्प लें।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा, आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये

(ख) सब किस्मत के अनुसार होता है - नहीं, नहीं, नहीं

कर्मों के बारे में दूसरी भ्रान्ति है-सब पहले से लिखी किस्मत के अनुसार होता है। मनुष्य इसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। आपके जीवन में दु:ख-सुख, यश-अपयश, उन्नति, गिरावट आदि के लिए दो तत्त्व जिम्मेदार हैं।

(1) **प्रारब्ध :-** यह हमारे संचित कर्मों का वह भाग है जिसे भोगने के लिए ईश्वर ने हमें यह शरीर दिया है। इसके फल पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। इसे किस्मत या पूर्व जन्मों का लाभ या घाटा मान सकते हैं। यदि आपके प्रारब्ध में पहले से ही कुछ जमा है तो थोड़े परिश्रम से ही आपको सफलता मिल जायेगी अन्यथा आपको अधिक मेहनत करनी पड़ेगी।

(2) **परिश्रम :-** मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है। इस पर हमारा पूर्ण अधिकार है। परिश्रम अगले जन्मों के प्रारब्ध (किस्मत) की नींव डालता है। परिश्रमी व्यक्ति को मेहनत करने का कुछ फल इस जन्म में व शेष फल आने वाले जन्मों में अवश्य मिलता है।

प्रारब्ध+परिश्रम पर ही हमारा वर्तमान निर्भर है केवल किस्मत पर नहीं। हम जो कुछ करते हैं वह पूर्वकृत कर्मफल और वर्तमान में किये परिश्रम के आधीन है। **अत: भाग्य हमारे या किसी ग्रह/देवी देवता के वश में नहीं हैं लेकिन पुरुषार्थ हमारे हाथ में है।**

आइये! दान, जप, यज्ञ, उपासना, पूजा आदि सात्विक कर्मों के साथ परिश्रम करने का संकल्प लें। केवल फलित (अमान्य) ज्योतिष विद्या और किस्मत के भरोसे न बैठे रहें।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये

(ग) क्या ग्रह हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं - नहीं!!!

कर्मों के बारे में तीसरी भ्रान्ति है-आकाशीय ग्रह हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं-उत्तर है बिल्कुल नहीं। लेकिन यह धारणा इतनी जड़ पकड़ चुकी है कि शिक्षित लोग भी (अधिकतर हिन्दू भाई/बहिन) जन्म पत्रियाँ बनवाते हैं। ग्रहों के कोप (केवल काल्पनिक) से बचने के लिए उल्टे-सीधे व गलत उपायों में अपना समय एवं धन नष्ट करने में लगे रहते हैं।

वेदों, उपनिषदों, दर्शनों में फलित ज्योतिष विद्या का जिक्र नहीं है। ऋषि दयानन्द जी ने भी फलित ज्योतिष को मान्यता नहीं दी है।

वास्तव में सुख-दु:ख कर्मोनुसार हैं-जैसे जिसके कर्म (वर्तमान एवं पूर्व जन्मों के कर्म) - वैसा उसका सुख-दु:ख। ग्रह पूजा उपाय अथवा यज्ञ, उपासना आदि आपको ईश्वर द्वारा दिये गये कर्म फल को कदापि नहीं बदल सकते। ईश्वर की कर्मव्यवस्था में दखलंदाजी नहीं कर सकते।

आत्म चिन्तन के लिए कुछ उदाहरण

(1) यदि एक राशि वाले का एक सा फल तो लोगों के आचार, व्यवहार, व्यक्तित्व, चरित्र, कारनामे एक दूसरे से उल्टे क्यों? उदाहरण-राम, रावण, दशरथ-दुर्योधन।

(2) ज्योतिष शास्त्र भविष्य में होने वाली भयंकर दुर्घटनाओं को क्यों नहीं बताता-कारगिल का युद्ध, न्यूयार्क दुर्घटना (11.4.2001), भारतीय संसद पर हमला (13.12.2001) आदि।

(3) यदि ग्रह उपाय छत्री का कार्य करते हैं तो पण्डितों, विद्वानों के बच्चे अनपढ़ क्यों रह जाते हैं।

आइये -अपने प्रारब्ध व कठिन परिश्रम में विश्वास रखें।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

(घ) क्या गुरु

(i) शिष्यों के पाप दूर कर उन्हें स्वयं भोग सकता है?

(ii) सीधी पहुँच ईश्वर के दरबार में कर सकता है?

(iii) आपको जीते जी मुक्ति दिला सकता है?

उपरोक्त तीनों प्रश्नों का उत्तर है- नहीं, कदापि नहीं।

ईश्वर सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है। उसके वैदिक कर्म फल सिद्धान्त (1) कर्म कर्ता ही भोक्ता (2) पाप-पुण्य के कर्मों के दो अलग-अलग खाते एवं (3) सुख-दुख ग्रहों के आधीन नहीं- अटल हैं। ईश्वर इन सिद्धान्तों में कभी भी परिवर्तन नहीं करता है।

उपरोक्त तीनों धारणायें केवल मिथ्या प्रचार हैं। कर्मफल सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। ईश्वर कर्मचारी नहीं है जो मनुष्यों की सिफारिश मानकर अपने सिद्धान्तों में तबदीली करे और अन्यायकारी कहलाये।

आजकल अनेक गुरु बीमारियों का फल भोगते हुए नजर आते हैं। कुछ तो अपने दुष्कर्मों के कारण जेलों में पड़े हुए हैं। ऐसे में अपने कर्मों का फल भोगते हुए कोई गुरु किसी शिष्य की, किसी भी प्रकार की सहायता कर पायेगा, बिल्कुल असंभव है।

अवश्यमेव भोक्तव्यं, कृत कर्मा शुभाशुभ (छः उपनिषद)

भावार्थ :- शुभ-अशुभ किये कर्मों का फल सबको अवश्य भोगना पड़ता है।

आत्मान्त गुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात।। (वैशेषिक 6/1/5)

भावार्थ- एक आत्मा के किये हुए कर्म का फल दूसरी आत्मा को नहीं मिल सकता है।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा, आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए

(ङ) सब कुछ ईश्वर ही करता है – गलत गलत

तेरी इच्छा के बिना, हे प्रभु मंगल मूल।
पत्ता तक हिलता नहीं, खिले न कोई फूल।

उपरोक्त धारणा वेदों के अनुसार बिल्कुल गलत है।

यदि ईश्वर ही मनुष्य से अच्छे या बुरे कार्य करवाता है अथवा प्राकृतिक आपदा (विपत्ति) देता है तो इनके फल रूप में सुख दु:ख का और दण्ड का भागी एवं जिम्मेदार ईश्वर ही बनेगा–''मनुष्य नहीं'' क्योंकि कर्ता ही भोक्ता का सिद्धान्त ईश्वर ने स्वयं स्थापित किया है। ऐसी स्थिति में सरकार द्वारा अपराधी को सामाजिक दण्ड देना भी उचित नहीं होगा। **जरा सोचिए ईश्वर क्या अन्यायकारी है जो अपनी करनी का दण्ड मनुष्यों को दिलवायेगा। इसीलिए यह धारणा गलत है।**

ईश्वर दयालु है, न्यायकारी है। उसने कर्म करने की स्वतंत्रता अपनी स्वेच्छा से सभी मनुष्यों को एक समान दी है। वह कुछ मनुष्यों को घृणित कार्य और कुछ को उत्तम काम करने की प्रेरणा दे ही नहीं सकता– कार्य करवाना तो दूर की बात है। यदि वह ऐसा करेगा तो उसकी न्यायकारिता एवं निष्पक्षता पर प्रश्न चिन्ह लग जायेंगे।

हाँ! कर्म का फल देने का अधिकार ईश्वर ने अपने पास रखा है। किसी देवी, देवता, ग्रह, वास्तुशास्त्र अथवा जो पवित्र व श्रेष्ठ महापुरुष (इस सृष्टि में) जन्म ले चुके हैं, उनको कदापि नहीं दिया है। इसीलिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है – **स नो मुञ्चचतु अहंसः।। (अ. 4/23/1)**

वह परमेश्वर हमें पापों से मुक्त कर दे।

साभार – पुस्तक – कर्म ही बलवान, लेखक – बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए

(च) क्या केवल सुमिरन से कल्याण हो सकता है-नहीं

क्या ईश्वर का नाम ही सब रोगों को दूर व समृद्धि की दवा है - नहीं

नि:सन्देह सुमिरण, ईश्वर उपासना करना अपने आप में एक सुकर्म है। लंगर लगाकर, भण्डारा करके निर्धनों व बेसहारों की भूख मिटाना भी एक उत्तम कार्य है। परन्तु इतना करके यह समझ लेना कि इतने से भवसागर पार हो जायेगा - **यह एक बहुत बड़ी भूल है।** हम प्रतिदिन समाज में देखते हैं कि अधिकतर नाम जपने वाले तो अपने को व अपने परिवार के मामूली कष्टों, क्लेशों से भी छुटकारा नहीं दिला पाते - कल्याण की बात तो दूर रही।

अत: केवल सुमिरण, उपासना अपने आप में श्रेष्ठ कर्म होते हुए भी हमारा उद्धार करने में सक्षम नहीं हैं। यह केवल शुभ कर्म करने और पाप कर्म को त्याग ने की प्रेरणा देते हैं। इसके साथ ही हमें कर्मशील बनना पड़ेगा, यम-नियम का पालन करना पड़ेगा। **काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि मानसिक रोगों पर विजय प्राप्त करनी होगी।** परोपकार, पर सेवा, सुपात्रों को दान, असहायों पर दया व मानव मात्र से प्रेम जैसे कर्म भी करने पड़ेंगे। तभी हम शारीरिक, आर्थिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति कर सकेंगे।

इसीलिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है -

यश: श्री श्रंयता मयि स्वाहा।। (यजु. 39/4)

भावार्थ :- **यश, ऐश्वर्य तथा धन-धान्य हमारे अन्दर आश्रित हो रहे हैं। मैं इनका स्वामी बनूँ।**

आइये! सुमिरन उपासना के साथ-साथ कर्मशील भी बनें। यम-नियम का अटलता से पालन करें।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा, आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए

कर्म की स्वतंत्रता-एक वरदान

सज्जनों! दयालु परमेश्वर ने मनुष्य को कर्म स्वतंत्रता का अधिकार देकर अद्वितीय उपकार किया है। ईश्वर सर्वरक्षक है, उसकी दयालुता देखिए-मनुष्य के पाप की ओर प्रवृत्त होते ही ईश्वर उसके मन में भय, शंका, लज्जा, संकोच के भाव उत्पन्न करके मनुष्य को ऐसा कार्य न करने के लिए सतर्क कर देता है। इसी प्रकार जब मनुष्य कोई श्रेष्ठ धर्मयुक्त कर्म करने का निश्चय करता है तो ईश्वर उसके हृदय में प्रसन्नता, उत्साह, गर्व, नम्रता का भाव भर कर ऐसा कर्म करने हेतु प्रेरित करता है।

यह मनुष्य की स्वतंत्रता का अधिकार ही है कि वह पाप की ओर झुके या पुण्य की ओर। **इसीलिए केवल ईश्वर ही मनुष्य को पाप कर्म के लिए दण्ड देता है अन्य कोई देवी-देवता या ग्रह नहीं। हाँ! किसी भी परिस्थिति में ईश्वर क्षमा नहीं करता है।**

कर्म स्वतंत्रता का वरदान मनुष्य के सामने तीन रास्ते खोलता है -

(1) मनुष्य द्वारा श्रेष्ठ पुण्य कर्म करके देवयोनि प्राप्त करना अथवा योगाभ्यास व साधना द्वारा मुक्ति पाना।

(2) पाप कर्मों की अपेक्षा उत्तम कर्म, परोपकारी कर्म अधिक करना और पुनः मनुष्य योनि प्राप्त करना।

(3) नीच पाप रूपी कर्म करना अथवा पुण्य कर्मों की अपेक्षा अधिक पाप कर्म करना और मृत्यु के उपरान्त नीच योनियों में जाना।

मित्रों! आपके सामने तिराहा है, जिधर जाना है, जाओ क्योंकि ईश्वर ने कर्म करने की पूर्ण स्वतंत्रता आपको दे रखी है। उसने आपको कठपुतली बना कर सृष्टि में नहीं भेजा है। कोई आपको रोकेगा नहीं-ईश्वर भी नहीं।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

अप अमतिं दुर्मतिं बाधमानाः। (यजु. 19/84)

(हम अज्ञान, दरिद्रता, कुमति को दूर कर आगे बढ़ें।)

जन्म सिद्धान्त एवं 84 लाख योनियों का सत्य

सज्जनो! दुःख, सुख, क्लेश, अगला जन्म (योनि) मनुष्य के स्वयं के कर्मों के फलस्वरूप ही निर्मित होते हैं।

अथैकयार्ध्व उदानः पुण्येन पुष्यं लोकं नयति।
पापेन पापमु भाभ्यामेव मनुष्य लोकम्।। (प्रश्नोपनिषद्)

भावार्थ :- पुण्य कर्म जीवात्मा को उत्तम योनियों और पाप कर्म जीवात्मा को नीच योनियों में ले जाता है। पाप पुण्य बराबर हैं तो जीवात्मा मनुष्य योनि को प्राप्त करता है।

अतः मनुष्य उत्तम कर्म करके मनुष्य से मुक्ति, मनुष्य योनि से देवयोनि, मनुष्य से मनुष्य योनि पा सकता है और नीच पाप रूपी कर्म करके साधारण अथवा दरिद्र मनुष्य, पशु-पक्षी योनि, कीट पतंग योनि, स्थावर योनि या अन्य निम्न योनियों में जा सकता है। पाप-पुण्य 50:50 प्रतिशत होने पर मनुष्य को सामान्यतः पुनः साधारण मनुष्य योनि मिलती है। ताकि वह उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके।

क्या प्रत्येक आत्मा 84 लाख योनियाँ भोगने के बाद ही मनुष्य योनि में जन्म लेती है। **नहीं-पूर्णतया असत्य है।** यह धारणा/मत वेद सम्मत नहीं है। यदि ऐसा हो तो फिर पुण्य पाप कर्म में मनुष्य अन्तर ही नहीं करेगा। केवल 84 लाख योनियों के बाद अपने नम्बर की प्रतीक्षा करेगा। यदि यह धारणा सत्य होती तो सभी सत्य शास्त्र एवं पथ सम्प्रदाय पुण्य कर्म करने और पाप कर्म न करने की प्रेरणा नहीं देते। 84 लाख योनियों का वर्णन वेदों में नहीं मिलता है।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

मनुष्य योनि में हमारे कर्म कैसे हों?

क्या मनुष्य योनि पाकर व्यक्ति पशुवत् कर्म करे और पहले से भी नीचे गिर जाय या उत्तम कार्य करके ऊँचा उठ जाये जिससे उसका भी उत्थान व कल्याण हो और दूसरों का भी भला हो जाये। इस विषय में शास्त्र कहते हैं -

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्।। (अ. 8/1/16)

भावार्थ :- **हे पुरुष! तुम्हारा लक्ष्य उन्नति करना है, अधोगति (दुर्गति, पतन, दुर्दशा) में जाना नहीं है।**

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात परिषोऽन्तरात्मनः।
तत्प्रयत्नेन कुवीर्त विपरीतं तु वर्जयेत्।। (मनु. 4/161)

भावार्थ :- वह कर्म प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए जिसके करने से हमारा अन्तर्रात्मा सन्तुष्ट हो और जो कर्म इसके विपरीत हो, उसे छोड़ देना चाहिए। जीवन तो सभी जीते हैं-मनुष्य भी और पशु, पक्षी व कीट भी। जो अच्छी तरह जीना जानता है उसी को अगली योनि मनुष्य की मिलती है।

''आदर्श दिनचर्या का एक प्रारूप''

(1) प्रातःकाल समय पर उठना-सूर्योदय से पूर्व का समय आनन्दकारी होता है। (2) शौच आदि से निवृत्त होकर व्यायाम व सैर करना।(3) स्नान करना - शारीरिक शुद्धि का विशेष ध्यान रखना। (4) प्रातः एवं सायं ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना व ध्यान करना - मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति के लिए। (5)चाय-नाश्ता - हल्का-फुल्का सात्विक भोजन करना के साथ फास्टफूड व मैदे की वस्तुओं का त्याग।(6) कार्यक्षेत्र पर जाना - ईमानदारी से कार्य करते हुए धर्मानुसार धन कमाना।(7) सायंकालीन समय - परिवार के साथ समय बिताना, माता-पिता की सेवा करना, परोपकार करना, दान देना। (8) रात को समय पर सोना व घर में टी.वी. पर नियंत्रण रखना।

हर रविवार को घर में हवन (यज्ञ) करना व आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में (वैदिक ज्ञान हेतु) जाना।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा, आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

पुण्य-पाप कर्मों का फल कब मिलता है

न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात् (न्याय)

भावार्थ :- कर्म का फल तुरन्त नहीं परन्तु कालान्तर में मिलता है अर्थात् कुछ समय के उपरान्त (कम या अधिक) के बाद मिलता है। यह अन्तराल कुछ दिनों, महीनों, वर्षों, कई जन्मों का भी हो सकता है। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार जैसे-जैसे कोई कर्म पकता है, वैसे-वैसे और तब तब ही उसका फल मिलता है।

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्मवेदनीय (मनु)

भावार्थ :- मनुष्य के कर्म संग्रह में से क्लेशमूलक (पाप, नीच कर्म) का फल उसे इस जन्म में भी मिल सकता है और आने वाले कई जन्मों में भी। **लेकिन एक बात निश्चित है कि फल भोगे बिना कर्म कदापि शान्त नहीं होते।**

इस जन्म में फल भोग का नियम

इस जन्म के कुछ कर्म + पिछले जन्मों के कुछ कर्म

जैसे ही कोई कर्म फल देने के लिए पकता है वैसे ही सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, न्यायकारी प्रभु उसका फल दे देता है। इस जन्म के जो कर्म हमारे जीते जी पक जाते हैं उनका फल इसी जन्म में मिल जाता है और जो बच जाते हैं (अर्थात् नहीं भोगे जाते) वे संचित कोश में जमा हो जाते हैं। संचित कोश के कर्मों में से भी जो कर्म फल देने के लिए तैयार हो जाते हैं उनका फल भी ईश्वर इसी जन्म में देता है।

इस प्रक्रिया में ईश्वर किसी देवी-देवता, ग्रह-नक्षत्र, वास्तु देवता, महापुरुष की दखलंदाजी (Interference) की अनुमति नहीं देता है। वास्तव में यह जड़ देवता शक्तिहीन है-कुछ नहीं कर सकते हैं।

साभार - पुस्तक - कर्म ही बलवान, लेखक - बिशम्बर नाथ अरोड़ा,
आर्य समाज, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

ईश्वर द्वारा दिया गया

पाप कर्म का दण्ड अभिशाप नहीं, वरदान है।

संसार में भौतिक माँ, अपने बेटे के हित में, उसकी गलतियों के लिए, उसे दण्ड देती है तो क्या मनुष्य की आध्यात्मिक माँ, परमपिता परमात्मा उसको दण्ड उसके कल्याणार्थ नहीं दे सकता। अवश्य दे सकता है और यह मनुष्य के भले के लिए, सुधार के लिए तथा उत्थान के लिए है।

पाप कर्म करने से मनुष्य की आत्मा अपवित्र हो जाती है। पापों के दु:ख रूप फलों के भोगने के बाद पापी का अन्त:करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) और प्रेरक आत्मा पुन: शक्तिशाली हो जाता है। शुद्ध हो जाता है।

दण्ड मनुष्य को पाप करने से (भविष्य में) बचाने का साधन है। ईश्वर दण्ड देकर मनुष्य को उठने व सुधरने का अवसर देता है। यदि दण्ड न दे तो अधिकतर व्यक्ति नीच/पाप कर्म ही करते जायेंगे, क्योंकि पाप कर्म करना सुगम है। इसमें बड़ा मजा आता है और तुरन्त भौतिक लाभ भी मिलता है। पुण्य कर्म करना तो तपस्या है, साधना है और इसमें समय, धन खर्च करने के साथ-साथ शारीरिक कष्ट भी होता है परन्तु तुरन्त फल तो केवल आत्म सन्तुष्टि ही है।

पाप कर्म का दण्ड (शारीरिक, मानसिक दु:ख, गरीबी, साधनों का अभाव आदि आदि) मिलने पर **मनुष्य को अधिक पुरुषार्थ एवं परिश्रम करके उस पर विजय पाने के लिए ईश्वर से ही प्रार्थना करनी चाहिये किसी अन्य से नहीं। यदि फिर भी दु:ख न जाये तो हृदय से उसे स्वीकार करते हुए ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिये। इधर-उधर काल्पनिक व अन्ध-विश्वासनीय उपायों के लिए नहीं भटकना चाहिये।**

आइये! पाप दण्ड से नहीं-पाप कर्म से बचें।

अति उत्तम (मनुष्य) योनि पाने के लिए

छः वैदिक उपाय

आदर्श जीवन कैसा होना चाहिये ? इस पर अनेक महापुरुषों और ऋषियों ने मनुष्य का मार्गदर्शन किया है। सभी का एक ही मत है कि मनुष्य को जीवन निर्वाह के लिए कार्य करते समय पुण्य कर्म एवं पाप कर्म को ध्यान में रखना चाहिये। सभी पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्यानि संयाति नवानि देही।।

(श्रीमदभगवद्गीता अध्याय 2 श्लोक 22)

भावार्थ :- जैसे मनुष्य फटे पुराने कपड़ों को त्याग कर दूसरे नये कपड़े पहन लेता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर नए शरीर को धारण करता है।

पुण्येव पुण्यं लोक नयति पापन् पापम्।।

(प्रश्नोपनिषद् 3/6)

भावार्थ :- व्यक्ति पुण्य कर्म करने से सुख युक्त जन्म पाता है और पाप कर्म से दुःख युक्त योनि को प्राप्त करता है।

ईश्वर का अटल कर्म फल वैदिक सिद्धान्त है- **जैसे कर्म वैसी योनि।** इसलिए मनुष्य को शुभ कर्म ही करने चाहिए ताकि अगला जन्म पुनः उच्च कोटि मनुष्य योनि मिल सके। अगले जन्म में उत्तम मनुष्य योनि प्राप्त करने के लिए पहला उपाय है यम-नियम का पालन करना। इनका वर्णन महर्षि पतंजलि के प्रसिद्ध ग्रन्थ ''योगदर्शन'' में है। इनके पालन करने का मुख्य लाभ है-मनुष्य धर्मानुसार धन कमाने के साथ-साथ बुरे कर्मों से बचता है।

पहला वैदिक उपाय : यम-नियम - इसके पालन से

दुराचार, दुर्गुण एवं विकारों का नाश

यम और नियम मनुष्य जीवन का मूल आधार है। यदि मनुष्य को यम-नियम का ठीक ज्ञान नहीं है तो उसका जीवन पशु जीवन से भी बदतर (ज्यादा खराब) है। यम-नियम के पालन से मनुष्य का सर्वतोमुखी (All Round) विकास होता है। मन मजबूत और पवित्र होता है। आत्मिक और मानसिक शक्ति बढ़ती है। मानसिक रोग (काम, क्रोध, मोह, लोभ, भय, अहंकार आदि) पर नियंत्रण रहता है। आसन व प्राणायाम का पूर्ण लाभ लेने के लिए भी यम नियम का पालन करना अति आवश्यक है।

आइये! इनको समझें, विचारें, मनन करें और अपने आचरण में यथासंभव पालन करने का प्रयत्न करें।

पाँच यम-सामाजिक नैतिकता नियम

(1) **अहिंसा** - मन, वाणी और शरीर से सभी प्राणियों के साथ सदैव प्रेमपूर्वक व्यवहार करना अहिंसा कहलाता है। कोई क्रिया अहिंसक है या हिंसक, इसका निर्णय न्याय अन्याय की कसौटी पर किया जाता है। **न्यायपूर्वक दंड देना अहिंसा और अन्यायपूर्वक सुख लेना हिंसा है।**

(2) **सत्य** :- सत्य सबसे बड़ा धर्म और झूठ सबसे बड़ा पाप है। बिना मतलब के बोलना, दूसरों की निन्दा करना, कठोर शब्द बोलना, अप्रिय सत्य बोलना अथवा प्रिय झूठ बोलना भी इस श्रेणी में आते हैं।

(3) **अस्तेय** :- मन, वाणी और शरीर से चोरी छोड़ देना अस्तेय कहलाता है। दूसरों की वस्तु बिना पूछे लेना/प्रयोग करना (पति-पत्नी की वस्तु सहित) बिना परिश्रम या अन्याय द्वारा धन एकत्रित करना, रिश्वत लेना, कार्यालय में कर्तव्य का पालन न करना, समय पर कार्यालय न जाना, पूरा न तोलना, उचित मूल्य से अधिक लेना, झूठ बोलकर सामान बेचना आदि कार्य भी चोरी की श्रेणी में आते हैं।

(4) ब्रह्मचर्य-लाभ एवं महत्त्व

ब्रह्मचर्य (CELIBACY) जीवन का आधार है। संसार में तीन मुख्य बल हैं-शरीर बल, ज्ञान बल, आत्म बल। अच्छे स्वास्थ्य (शरीर बल) के बिना ज्ञान बल और आत्म बल प्राप्त करना बहुत कठिन है। ब्रह्मचर्य के पालन से स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है, समस्त दोषों का नाश होता है, स्मरण शक्ति तेज व स्थायी बनी रहती है। ग्रहस्थी को गर्भ निरोधक साधनों व कण्डोम की जरूरत नहीं पड़ती है। समाज में वासना सम्बन्धी पाप कम होते हैं। जीवन आनन्दमय बन जाता है।

वेदों के अनुसार ब्रह्मचर्य का अर्थ है-ईश्वर चिन्तन करना, आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन करके ज्ञान अर्जित करना एवं वीर्य रक्षण करना। वीर्य का रक्षण विद्यार्थियों, युवाओं और गृहस्थियों-तीनों के लिए आवश्यक है। वीर्य का अभाव अथवा अपर्याप्त होने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त होती है - यजुर्वेद

Practice of Brahamchaya gives good health, inner strength, peace of mind and long life.

Swami Shivananda

ब्रह्मचर्य के पालन के लिए सात्विक भोजन, नियमित निद्रा, उचित दिनचर्या, आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन, योगाभ्यास करना चाहिये। कुसंगति और अश्लील फिल्मों से बचना चाहिये।

अधिक जानकारी के लिये लेखक (मदन अनेजा) द्वारा लिखित पुस्तक ''जीवन निर्माण एवं उपासना में ब्रह्मचर्य का महत्व www. manavsanskar.com से निःशुल्क download करें।

(5) अपरिग्रह - पाप कर्म से बचाता है

मन, वाणी व शरीर से अपनी योग्यतानुसार अनावश्यक भौतिक पदार्थों की इच्छा न करना, उनका संग्रह न करना, अनावश्यक विचारों को मन में या तो न आने देना या उनको मन से निकाल देना, अपरिग्रह कहलाता है। परिग्रह का अर्थ है जमा करना, एकत्र करते रहना, भले ही उसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता हो या न हो।

अपरिग्रह की आदत (1) दूसरों को कभी न कभी, किसी न किसी रूप में पीड़ा देती है। (2) समाज में असमानता पैदा करती है। (3) स्वयं को परेशानी में डालती है-उदाहरण के लिए आजकल के कुछ राज नेता एवं व्यापारी। (4) मानसिक रोग ''लोभ'' को मजबूत करती है। (5) मनुष्य में मानव अधिकार संरक्षण एवं दान की प्रवृत्ति पैदा नहीं होने देती। (6) पाप वृत्ति को जन्म देती है।

अपरिग्रह का पालन करने से मनुष्य छल, कपट, झूठ, अन्याय व ईर्ष्या से बचता है। मन शान्त रहता है। चित्त पर बुरे संस्कार नहीं पड़ते हैं। अगले जन्म में उत्तम मनुष्य योनि प्राप्त होती है।

हों विचार समान सबके चित्त, मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर, भाग्य पा सब नेक हों।।

संगठन-सूक्त

पुस्तक- योग चिन्तन जप एवं ध्यान, लेखक-मदन लाल अनेजा

सभी जन सुखी हों

पाँच नैतिक (व्यक्तिगत) नियम

स्वस्थ जीवन एवं आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक आदतों (अभ्यास) को नियम कहते हैं। सभी पाँचों नियम का वर्णन योगदर्शन में मिलता है। ये आत्मा, मन और इन्द्रियों के पोषक और शोधक हैं।

(1) शौच (शुद्धि) - सत्वबुद्धि व इन्द्रियों पर विजय का साधन

मन, वाणी और शरीर की पवित्रता को शौच या शुद्धि कहते हैं। **बाह्य शुद्धिः** मनुष्य को अपने वस्त्र, बाह्य स्थान, शरीर व धन कमाने के साधनों को पवित्र रखना चाहिये। **आन्तरिक शुद्धिः** मनुष्य को निरन्तर आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन (स्वाध्याय) करना चाहिये। सत्संग में भाग लेना, प्राणायाम करना, सत्य बोलना, धर्मानुसार आचरण करना भी आन्तरिक शुद्धि है। शुद्ध व पवित्र मन वालों की आयु दीर्घ होती है।

(2) सन्तोष :- प्रसन्नता व मानसिक शान्ति का उपाय

अपनी योग्यता, शक्ति, ज्ञान व साधनों का पूर्ण प्रयोग करने के बाद मनुष्य को जो फल मिलता है उससे सन्तुष्ट होना सन्तोष कहलाता है। यह आर्थिक उन्नति में बाधक नहीं है।

जिस व्यक्ति को अपने किये गये कर्म में सन्तोष व कर्मफल में विश्वास रहता है, वह हमेशा प्रसन्न रहता है। कठिन परिश्रम करता रहता है और इधर-उधर ज्योतिषियों, पंडितों, तांत्रिकों के पास जाकर अपना समय व धन नष्ट नहीं करता है। जो कुछ मनुष्य के पास है उसके लिए ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिये। यही सन्तोष है।

आरोह तमसो ज्योतिः अ. 8/1/8

भावार्थ :- मानव ! तू अज्ञानान्धकार से ऊपर उठकर ज्ञान प्राप्त कर।

(3) तपः शरीर व इन्द्रियों की शुद्धि का उपाय

धर्म तथा न्याय का पालन और शुभ कार्य करते हुए सुख-दुःख, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मान-अपमान आदि को प्रसन्नता से सहना तप है।

शरीर का तपः अपनी इन्द्रियों को संयम में रखना, माता-पिता, गुरुओं, विद्वानों, निर्धन व कमजोर की सेवा करना शारीरिक तप है।

वाणी का तपः मीठा बोलना, सत्य बोलना, ठीक व कम बोलना वाणी के तप के अंतर्गत आता है।

मन का तपः सभी इन्द्रियाँ मन का आदेश मानती हैं, इसलिए मन का तप के बिना शरीर व वाणी का तप नहीं हो सकता है। मन को एकाग्र करना, बुद्धि को सुबुद्धि बनाना, मन का तप कहलाता है। प्राणायाम मन को संयम में रखने का एक मुख्य साधन है।

(4) स्वाध्याय :- मन व बुद्धि की शुद्धि का एक मात्र उपायः आजकल वातावरण में भौतिकवाद का ही बोलबाला है। अच्छे गुरुओं का अभाव हो रहा है। आर्यसमाज (वेदों का ज्ञान देने वाला) के साप्ताहिक (रविवार) सत्संग के लिए भी समय देना मनुष्य की दैनिक दिनचर्या का हिस्सा नहीं है। इसीलिए, घर पर केवल आर्ष ग्रन्थों से ही अपने जीवन लक्ष्य हेतु मार्गदर्शन लेना उचित है। भौतिक विद्या व आध्यात्मिक विद्या-दोनों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। इनमें समन्वय बना कर जीवन में उन्नति करनी चाहिये। ईश्वर के निज नाम ''ओ३म्'' का जप, गायत्री मंत्र का जप (अर्थ/भावार्थ सहित) करना भी स्वाध्याय है।

आरोह तमसो ज्योतिः अ. 8/1/8

मानव ! तू अज्ञानान्धकार से ऊपर उठकर ज्ञान को प्राप्त कर।

(5) ईश्वर प्रणिधान-चित्त शुद्धि का उपाय

जब मनुष्य अपना प्रत्येक कार्य/कर्म यह जानते हुए, यह मानते हुए करता है कि ईश्वर उसे देख रहा है, सुन रहा है, जान रहा है और यह कार्य ईश्वर की उपस्थिति में हो रहा है तो ऐसी मानसिक स्थिति को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं।

ईश्वर प्रणिधान का दूसरा और अच्छा अर्थ है-ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना। ईश्वर की आज्ञा के अनुसार तन, मन, धन का सद्उपयोग करना।

ईश्वर-चेतन है, सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, निराकार एवं अखण्ड है। इसका कोई रंग, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, भार, आकार नहीं है। इन गुणों का चिंतन दर्शाता है कि सृष्टि में जन्म लेने वाले सभी महापुरुष/योग पुरुष/ऋषि मुनि सम्मानीय व अनुकरणीय है । **लेकिन क्या वे ईश्वर के स्थान पर अथवा ईश्वर के समान पूजनीय हो सकते हैं, इसका निर्णय आप को स्वयं ही अवश्य करना चाहिये ताकि आप ईश्वरीय आनन्द को वास्तव में अनुभव कर सकें। ईश्वर की उपासना ठीक प्रकार से कर सकें। ईश्वर प्रणिधान का पालन कर सके।**

ईश्वर प्रणिधान मनुष्य को पाप कर्म से बचाता है।

चेतन, चेत प्रभु चिन्तन में
भौतिकता में भटक रहा क्यों? शान्ति नहीं है धन में।
ज्ञान के चक्षु खोल दे साधक, शान्ति मिलेगी मन में।।

यन्ति प्रमादमतन्द्राः। अथर्ववेद

भावार्थ :- प्रमादहीन (जागरूक एवं आलस्यहीन) व्यक्ति अत्यधिक आनन्द को प्राप्त करते हैं।

दूसरा वैदिक उपाय - शुभ कर्म एवं उपासना

यह संसार कर्मक्षेत्र है। सुख-दु:ख, अमीरी-गरीबी, यश-अपयश, विद्या, सांसारिक वस्तुएँ आदि-सब कर्माधीन हैं। ग्रह, नक्षत्र, धार्मिक जगह पर स्नान, मन्दिरों के दर्शन आदि पर आश्रित नहीं है। मनुष्य का आज तो आज उसके कल का निर्माण भी उसके वर्तमान कर्म ही तय करते हैं, बेशक जो कल बीत गया उस पर अब उसका जोर नहीं रहा। लेकिन वर्तमान एवं भविष्य में मनुष्य कर्म करने में पूर्णतया: स्वतन्त्र है। मनुष्य जैसा शरीर (योनि) भविष्य में पाना चाहे, तदानुसार पुण्य या पाप कर्म करके पा सकता है।

ईष्ट कर्म (ईश्वर उपासना):

केवल मनुष्य ही कर सकता है। इसका फल भी केवल उसे ही मिलता है।

आपूर्त्त कर्म (परोपकार):

कोई भी प्राणी कर सकता है। परोपकार का फल किसी भी योनि में भोगा जा सकता है।

शुभ कर्म+ईश्वर उपासना के परिणाम स्वरूप मानव जीवन अवश्य मिलता है। इसके साथ परोपकार द्वारा मनुष्य जीवन सफल होता है अर्थात् अधिक सुविधाएं व प्रतिष्ठा मिलती है।

अच्छे कर्म + परोपकार (ईश्वर उपासना रहित) करने से मानव जीवन न मिलकर अन्य प्राणियों वाली योनियाँ (परोपकार के स्तर के अनुसार) मिलती हैं।

अच्छे कर्म+ ईश्वर भक्ति (परोपकार रहित) से साधारण मनुष्य का जन्म तो मिलता है लेकिन सफलता व अधिक सुविधायें (अगले जन्म में) नहीं मिलती हैं।

अत: मनुष्य को कर्म, ईश्वर भक्ति एवं परोपकार-तीनों करने चाहिये।

मा चिद् अन्यद् विशंसत अ. 20/85/1

भावार्थ :- हे मनुष्यों! तुम परमेश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य की स्तुति मत करो। मैं भी सर्वव्यापक परमेश्वर की ही स्तुति करूँगा।

प्रार्थना-उपासना का आधार

प्रार्थना-उपासना वेदानुसार करना-एक बड़ी सफलता है। वेदों, उपनिषदों एवं **योगदर्शन में प्रार्थना, उपासना व ध्यान के लिए केवल ओ३म् (परमात्मा के निज नाम), गायत्री मंत्र और केवल वैदिक मंत्रों के जप (भावार्थ सहित) चिंतन को ही स्थान दिया है-किसी अन्य देवता, भगवान, महापुरुष, मन्त्र, ग्रह को नहीं।** वेदानुसार उपासना का अर्थ है-परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव का चिंतन करना। उनमें से वे गुण, कर्म, स्वभाव जो मनुष्य अपने जीवन में अपना सकता है उनका अनुसरण करना, अपने जीवन में अनुभव करना। ईश्वर की आज्ञाओं के अनुसार अपनी दिनचर्या रखना।

मित्रो! कुछ मनुष्य योगदर्शन के अनुसार प्रार्थना-उपासना के सिद्धान्त या उपासना की सही विधि जानते ही नहीं या थोड़ा सा ही जानते हैं अथवा ठीक प्रकार से नहीं जानते हैं। ऐसे व्यक्तियों की उपासना पूर्ण सफलता की ओर नहीं बढ़ पाती है। इसलिए वे ईश्वरीय आनन्द और सही धर्माचरण से वंचित रह जाते हैं।

प्रार्थना-उपासना में सफलता के लिए मनुष्य को प्रतिदिन पाँच क्रियायें करने का विधान है। **(1) यम नियम का पालन करना**-मानसिक चिंता/दुख से बचने के लिए **(2) शरीर को स्वस्थ रखना**-आलस दूर करने के लिए **(3) आसन में बैठने का अभ्यास करना** - जीवन में स्थिरता बनाये रखने के लिए **(4) उपयुक्त प्राणायाम का प्रयोग करना**, मन-चंचलता रोकने के लिए **(5) मंत्र जप के साथ ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का चिंतन करना**-ईश्वर के अस्तित्व को समझने के लिए।

लाभ :- उपरोक्त क्रियाओं से मन की एकाग्रता व ध्यान में रुचि बढ़ती है। ईश्वरीय आनन्द का अनुभव होता है। निष्काम कार्यों में रुचि जाग्रत होती है।

पुस्तक - प्रार्थना-उपासना विधि, लेखक-मदन लाल अनेजा

स्वस्ति पन्थामनुचरेम् ऋ. 5/5/15

भावार्थ :- हम सर्वदा कल्याण के मार्ग पर ही चलें।

ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव

वेदों में और आर्ष ग्रन्थों में ईश्वर, आत्मा, प्रकृति के स्वरूप पर व्यापक प्रकाश डाला है। बिना ईश्वर, आत्मा, प्रकृति के गुण, कर्म, स्वभाव को समझे, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना व ध्यान करना असंभव है। सांसारिक सम्बन्धों को अच्छी प्रकार से समझ पाना कठिन है। उस परम पिता परमेश्वर का सही तरीके से धन्यवाद करना मुश्किल है।

ईश्वर- **1. सत् है :** ईश्वर की सत्ता है, उसका अस्तित्व है। **2. चित्त है**-ईश्वर चेतन है, उसका सम्पूर्ण ज्ञान स्वभाविक और पूर्ण है। **3. आनन्द स्वरूप है**-ईश्वरीय आनन्द पूर्ण तृप्ति देता है, शुद्ध है, दु:ख रहित है। **4. सर्वव्यापक है**-कभी भी शरीर धारण नहीं करता है, स्थूल और सूक्ष्म-सभी पदार्थों में विद्यमान है। जीवात्मा में भी व्यापक है। **5. सर्वज्ञ है**-सब कुछ जानता है। सबसे बड़ा ज्ञानी है। **6. सर्वशक्तिमान है**-अपने कार्यों को अपनी सामर्थ से पूर्ण कर लेता है। अर्थात् संसार की उत्पत्ति करने, पालन करने, वेदों का ज्ञान देने, प्रलय करने, सभी जीवों को उनके कर्मों का फल देने में किसी की सहायता नहीं लेता है। **7. सर्वाधार है**-सबको धारण करने वाला है, हमारा और पृथ्वी, सूर्य आदि सब पदार्थों का आधार है। **8. सर्वेश्वर है**-सबका स्वामी है अर्थात् प्रकृति, सृष्टि, जीव तथा सब सत्य विद्याओं और शक्तियों का स्वामी है। **9. सर्वान्तर्यामी है**-सबके अन्दर विद्यमान रहकर सबका नियन्त्रण करता है। **10. अनन्त है**-उसकी कोई सीमा नहीं है। वह ब्रह्माण्ड से भी बड़ा है। **11. अजर है**-कभी बूढ़ा नहीं होता। **12. निर्विकार है**-परिवर्तन से रहित है। **13.सर्वरक्षक है। 14. सृष्टि कर्ता है,** 15. अजन्मा, अनादि, अनुपम, अमर, अभय, न्यायकारी, निराकार, दयालु, नित्य है। उसका निज नाम ''ओ३म्'' है।

अर्थिनो यन्ति चेदर्थम्। ऋ. 8/79/5

भावार्थ :- पुरुषार्थी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

जीव-आत्मा के गुण, कर्म, स्वभाव

1. चेतन है-इच्छा, प्रयत्न, अल्पज्ञान, द्वेष आदि गुणों वाला है। यह गुण शरीर आदि पदार्थों में नही होते हैं। **2. ईश्वर से भिन्न है**-सृष्टि में विद्यमान पदार्थों का भोक्ता है। **3. शरीर से भिन्न है**-इसमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान आदि गुण हैं। यह गुण शरीर आदि जड़ पदार्थों में नहीं होते हैं। **4. कर्म**- करने में स्वतंत्र है। **5. इन्द्रियाँ व मन का स्वामी है।** इन्द्रियाँ तभी तक शरीर में कार्य करती हैं, जब तक आत्मा शरीर में रहता है। इन्द्रियों के विकार से आत्मा विकारी नहीं होता है। **6. कर्मफल** - भोगने में कुछ परतन्त्र है। कर्मफल व्यवस्था ईश्वर के अधीन है। जीवन में प्राप्त होने वाले सभी सुख दु:ख आत्मा के कर्मों के फल नहीं हैं। **7. सत् है, नित्य है**-सदा रहने वाली है। इसका नाश नहीं होता है। **8. एकदेशी है**- जिस शरीर के साथ संयोग करता है, उसी में अपने कर्म करती है, अपने भोग भोगती है। **9. सूक्ष्म है** - जीवात्मा बाल से भी अधिक सूक्ष्म है। **10. विभिन्न आत्माओं के स्वरूप** में कोई अन्तर नहीं है, अन्तर, शरीर, बुद्धि, ज्ञान, बल, कर्मों आदि के कारण है। **11. आत्मा का बल**-विद्या/ज्ञान है। जैसे-जैसे विद्या बढ़ती जाती है, आत्मा बलवान होती जाती है। इसके विपरीत ज्ञान कम होने पर आत्मा कमजोर होती जाती है। **12. पवित्र है**-शरीर, बिना आत्मा के, अपवित्र है। यह हृदय में अणु रूप में स्थित है। इसका प्रभाव शरीर में रहता है। शरीर रुग्ण (अत्यधिक अस्वस्थ/बीमार) होने पर आत्मा शरीर को छोड़ देता है।

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। (ऋ. 4/33/1)

भावार्थ :- देवता भी निरुद्यमी आलसी से मित्रता नहीं करते हैं।

प्रकृति-सृष्टि

1. सत्व, रज और तम-इन तीन प्रकार की सूक्ष्मतम् परमाणुओं की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है।
2. ईश्वर ने इन परमाणुओं में गति उत्पन्न करके सृष्टि की रचना निम्न प्रकार की है-

(i) सर्वप्रथम महतत्त्व - बुद्धि की रचना की।

(ii) महतत्त्व से अहंकार नामक पदार्थ की उत्पत्ति की।

(iii) अहंकार से 16 पदार्थ बनाये -

5 ज्ञानेन्द्रियाँ (त्वचा, आँख, कान, नाक और जिव्हा)

5 कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुँह, लिंग, गुदा)

5 तन्मात्रायें (शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श) और 1 मन

(iv) 5 तन्मात्राओं से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि 5 स्थूलभूतों की रचना की।

(v) इन 5 स्थूलभूतों से वृक्ष, वनस्पतियाँ, पशु, पक्षी, कीट, मनुष्य, सूर्य, चन्द्र आदि की उत्पत्ति की।

ईश्वर-जीव-प्रकृति के सही स्वरूप का चिंतन मनन करने पर ही ईश्वर प्रार्थना उपासना में सफलता मिलती है।

अज्ञानी होना गलत नहीं है,
अज्ञानी बने रहना गलत है।
-महर्षि दयानन्द

मान्तः स्युर्नो अरातयः। (अ0 13/1/59)

भावार्थ :- हमारे मन में काम-क्रोध, राग-द्वेष आदि शत्रु न रहें।

मंत्र उच्चारण एवं प्रार्थना-उपासना-आवश्यक बातें

साधारणतया: धार्मिक क्रियायें (जैसे यज्ञ/हवन, संस्कार पूजा, धार्मिक अनुष्ठान आदि) के समय मन्त्र उच्चारण में प्राणायाम अथवा श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया को (समय की बाध्यता के कारण) महत्व नहीं दिया जाता है। उच्चारण की गति-धीमी, मध्यम, तेज को भी ध्यान में नहीं रखा जाता है।

मन्त्र जप करते समय अथवा ध्यान करते समय, आध्यात्मिक दृष्टि से निम्न बातों/पहलुओं पर ध्यान रखना आवश्यक होता है :-

1. मन्त्र उच्चारण में शीघ्रता (जल्दी) नहीं करना।
2. मन्त्र उच्चारण स्पष्ट, ठीक व संगीतमय होना।
3. मन्त्र का अर्थ/भावार्थ विदित होना अथवा ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव वाले शब्दों से (मंत्र उच्चारण के बाद) प्रभु का चिंतन मनन करना।
4. मंत्र उच्चारण के समय उपयुक्त प्राणायाम-भस्त्रिका, कुम्भक, स्तम्भवृत्ति आदि करना (मन व मौसम की स्थिति के अनुसार)।
5. उपयुक्त आसन में बैठना।
6. प्राय:सायं दोनों समय अभ्यास करना।

परमात्मा के उपकारों का धन्यवाद, अपने दुर्गुणों का चिन्तन और आदर्श मानव बनने का संकल्प, यही सच्ची प्रार्थना है-मदन अनेजा

ओ३म् शब्द द्वारा जप विधि

ओ३म् का जप अथवा गायत्री मंत्र का जप (अर्थ या भावार्थ सहित) ही वेदों के अनुसार श्रेष्ठ जप है। धीमा, गहरा, लम्बा श्वास-प्रश्वास (प्राणायाम) के साथ जप करने से आत्म विश्वास का विकास होता है। इससे शारीरिक एवं मानसिक रोगों में अत्यन्त लाभ होता है। साकार रूप से किसी देवी-देवता या महापुरुष की आराधना (देवी-देवता की उपासना या पूजा की गलत आदत) से मनुष्य मुक्ति पा सकता है।

प्राणायाम के साथ ओ३म का जप करने से शारीरिक चंचलता और मन की चंचलता कम होती जाती है। मन निराकार परमात्मा में लगने लगता है। ध्यान की स्थिति धीरे-धीरे अभ्यास करने पर आने लगती है। वास्तव में यह दो मंत्र और यम नियम का जीवन में पालन मनुष्य के लिए विशेष कल्याणकारी है।

विधि :- 1. प्रात:काल स्नान आदि करके सुख आसन/सिद्ध आसन में बैठें।

2. अंगूठों और तर्जनी उंगली से ज्ञान मुद्रा बनाकर घुटनों पर रखें।

3. ध्यान को आज्ञाचक्र/मंत्र उच्चारण पर स्थिर रखें।

4. धीरे-धीरे लम्बा, गहरा, धीमा-धीमा श्वास नासिकाओं से अन्दर लें। (पूरक क्रिया)

5. श्वास धीरे-धीरे छोड़ते हुए ओ३म का उच्चारण दीर्घ स्वर में करें। (रेचक)
ओ.....३ .....म् .... (धीमी लय के साथ)

6. ओ३म का उच्चारण व श्वास बाहर निकलने की प्रक्रिया एक साथ पूर्ण अथवा समाप्त होनी चाहिए।

7. श्वास पूर्ण रूप से बाहर निकलने के बाद एक या दो सामान्य श्वास लें।
सामान्य श्वास के साथ निम्न वाचिक उच्चारण करें।
प्रभो! आप सर्वरक्षक हैं। (इसके बाद 2 सामान्य श्वास लें)

8. अब 30 सैकण्ड तक श्वास को जहाँ का तहाँ रोकें (कुम्भक क्रिया) और निम्न मानसिक उच्चारण करें-**प्रभु! आप सबकी रक्षा कर रहे हैं। मेरी रक्षा भी कर रहे हैं। मैं हृदय से आपको धन्यवाद देता हूँ।**

यह एक चक्र पूरा हुआ। **ऐसे 5 या 11 बार ओ३म् का जप करें।**

गायत्री मन्त्र की जप विधि

(ओ३म् जप विधि में निर्देश 1, 2, 3 का अनुसरण करें)

गायत्री मंत्र को चार चरण में बाँटा गया है -

(1) भूर्भव: स्व: - पहला चरण
(2) तत सवितुर्वरेण्यम - दूसरा चरण
(3) भर्गो देवस्य धीमहि - तीसरा चरण
(4) धियो यो न प्रचोदयात् - चौथा चरण

गायत्री मंत्र का सरल भावार्थ अच्छी तरह कंठस्थ कर लें।

प्रभु! आप प्राण स्वरूप, दु:ख विनाशक, सुख स्वरूप, शान्ति स्वरूप, श्रेष्ठ, तपस्वी, पापनाशक और देव स्वरूप हैं। मैं आपके इस स्वरूप को अपने अन्त:करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) में धारण करता हूँ। मेरी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करें। मुझे उत्तम गुण प्राप्त करने की प्रेरणा दें।

कविता भावार्थ :- तूने हमें उत्पन्न किया, पालन कर रहा है तू।
भी कंठस्थ कर लें
तुझसे ही पाते प्राण हम, दुखियों के कष्ट हरता है तू।
तेरा महान तेज है, छाया हुआ सभी स्थान।
सृष्टि की वस्तु वस्तु में, तू हो रहा है विद्यमान।।
तेरा ही धरते ध्यान हम, मांगते तेरी दया।
ईश्वर हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग पर चला।।

विधि :- (A) धीरे-धीरे लम्बा गहरा श्वास नासिका के अन्दर लें। (पूरक)

(i) श्वास छोड़ते हुए ओम् का उच्चारण ईश्वर सर्वरक्षक है, इस भावना के साथ करें।
ओ ..... ३ ..... म् (दीर्घ स्वर एवं धीमी लय में)

(ii) तत्पश्चात् एक दो सामान्य श्वास ले फिर पहले चरण का उच्चारण करें। -
भूर्भुव: स्व: (श्वास बाहर निकालते/छोड़ते हुये)

B. पुन: धीरे-धीरे लम्बा गहरा श्वास नासिक से अन्दर लें। (पूरक क्रिया)

(i) श्वास छोड़ते हुए दूसरे चरण का उच्चारण करें।
तत सवितुर्वरेण्यम् (श्वास बाहर निकालते/छोड़ते हुये)
उपरोक्त विधि के अनुसार ही तीसरे एवं चौथे चरण का उच्चारण करें।

(C) अब गायत्री मंत्र का सरल भावार्थ बोलें तत्पश्चात् कविता भावार्थ बोले - यह पांच या 11 बार जप के बाद केवल अन्त में बोलना है।

नोट - चारों चरणों का अभ्यास/जप 5 या 11 बार करें। फिर बाद में एक बार भावार्थ बोलें।

केतुं कृण्वन्नकेतवे। यजु. 29/37

भावार्थः- हम अज्ञानियों को ज्ञान देते हुए आगे बढ़ें।

प्रार्थना-उपासना में वैदिक भजनों का महत्व

ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना-उपासना में वैदिक भजन (निराकार परमात्मा की स्तुति, प्रशंसा) का गायन करने से निराकार परमात्मा की उपासना में मन लगता है। यह भजन अनेक मानसिक रोगों को कम करने में सहायक होते हैं। साधक को अपनी अल्पज्ञता और ईश्वर की महानता व शक्ति का बोध होता है। **पंच महायज्ञः** (ब्रह्मयज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ एवं अतिथि यज्ञ) करने की प्रेरणा मिलती है।

ओ३म जप व गायत्री जप के बाद-प्रातःकाल बोलने के 2 भजन

1. **ओ३म् है जीवन हमारा**

ओ३म् है जीवन हमारा, ओ३म् प्राणाधार है।
ओ३म् है कर्त्ता विधाता, ओ३म् पालनहार है।।
ओ३म् है दुःख का विनाशक, ओ३म् सर्वानन्द है।
ओ३म् है बल-तेजधारी, ओ३म् करुणाकन्द है।।
ओ३म् सबका पूज्य है, हम ओ३म् का पूजन करें।
ओ३म् ही के ध्यान से, हम शुद्ध अपना मन करें।।
ओ३म् के गुरु-मंत्र जपने, से रहेगा शुद्ध मन।
बुद्धि दिन-प्रतिदिन बढ़ेगी, धर्म में होगी लगन।।
ओ३म् के जप से हमारा, ज्ञान बढ़ता जायेगा।
अन्त में प्रिय ओ३म् हमको, मोक्षपद पहुँचायेगा।।

2. चेतन, चेत (साधकों के लिए संदेश)

चेतन, चेत प्रभु चिन्तन में।

श्रद्धा पूरित हो, कर धारण सात्विकता जीवन में।। चेतन0।।

दिव्य उषा की उदित हुई हैं, किरणें तब प्रांगण में।

तू पगले, अब तक भी सोया, उठ लग ईश-भजन में।।चेतन0।।

भौतिकता में भटक रहा क्यों? शांति नहीं है धन में।

ज्ञान के चक्षु खोल दे साधक, शांति मिलेगी मन में।।चेतन0।।

यम नियमों का पालन करके, सिद्धि पा आसन में।

प्राणायामाभ्यासी बन, लग योग-क्रिया साधन में।।चेतन0।।

योग क्रिया से देती दिखाई, आभा आत्म-गगन में।

दिव्यलोक प्रकाशित होगा, निर्मल पावन मन में।। चेतन0।।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव मंत्र सदा जप मन में।

अग्ने नय सुपथा जो गाये, आये न भव-बंधन में।। चेतन0।।

सच्चा मानव 'पाल' वही जो, रहता मग्न मनन में।

सुरभित सुमन खिलेंगे उसके, जीवन के कानन में।। चेतन0।।

प्राणायाम द्वारा जप करने से लाभ

(1) दीर्घ व गहरा श्वास प्रश्वास की प्रक्रिया में विशेष प्रयत्न की जरूरत नहीं पड़ती हैं यह हानि रहित क्रिया है। इससे शरीर की सभी कोशिकायें सक्रिय (Active) हो जाती हैं। (2) शारीरिक व मानसिक कार्यक्षमता और स्फूर्ति बढ़ती है। (3) शरीर स्वस्थ व दीर्घ आयु को प्राप्त करता है। (4) जप काल (उपासना काल) में रीढ़ की हड्डी व गर्दन सीधा रखने से रीढ़ व कमर सम्बन्धी रोग नहीं होते हैं। (5) कुछ क्षण के लिए कुम्भक या स्तम्भवृत्ति प्राणायाम करने से शरीर में स्थिरता आती है। इस स्थिति में ईश्वरीय गुण, कर्म, स्वभाव का चिंतन करने से ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति होती है।

सर्दियों में ज्यादा गहरा लम्बा श्वास न ले ताकि ठंड न लगे।

ओ३म् व गायत्री जप के बाद-सायंकाल बोलने के 2 भजन

1. भरोसा कर तू ईश्वर पर

भरोसा कर तू ईश्वर पर, तुझे धोखा नहीं होगा।
यह जीवन बीत जायेगा, तुझे रोना नहीं होगा।।
कभी सुख है कभी दु:ख है, यह जीवन धूप छाया है।
हंसी में ही बिता डालो, बितानी ही यह माया है।।
जो सुख आवे तो हंस देना, जो दु:ख आवे तो सह लेना।
न कहना कभी कुछ जग से, प्रभु से ही तू कह लेना।।
यह कुछ भी तो नहीं जग में, तेरे बस कर्म की माया।
तू खुद ही धूप में बैठा, लखे निज रूप की छाया।।
कहां ये था कहां तू था, कभी तो सोच ए बन्दे।
झुका कर शीश को कह दे, प्रभु बन्दे प्रभु बन्दे।।

2. तेरा शुक्रिया

मुझे तूने दाता, सब कुछ दिया है।

तेरा शुक्रिया है, तेरा शुक्रिया है।।

न मिलती दी हुई, अगर दात तेरी।

तो क्या थी जमीन में औकात मेरी।

ये बन्दा तो तेरे सहारे जिया है।। तेरा शुक्रिया.....

ये जायदाद दी है, ये औलाद दी है।

मुसीबत में हर वक्त, इमदाद की है।

तेरा ही दिया, मैंने खाया पिया है।। तेरा शुक्रिया.....

मेरा ही नहीं है, सभी का तू दाता।

सभी को सभी कुछ, है देता दिलाता।

जो खाली था दामन, वह तूने भरा है।। तेरा शुक्रिया.....

मेरा भूल जाना, तेरा न भुलाना।

तेरी रहमतों का, कहां है ठिकाना।

तेरी इस मोहब्बत ने, पागल किया है।। तेरा शुक्रिया.....

नव वर्ष पर लेने का संकल्प

मित्रो! संकल्प में बहुत बड़ी प्रेरणा और शक्ति होती है।

संकल्प के अनुसार आचरण/कार्य करने से हमारे ऊपर प्रभु की कृपा होती है। सभी शुभ कार्य सफल होते हैं। आइये! निम्न वैदिक मंत्रों से प्रेरणा लेकर अधिक शुभ कर्म करने का आज संकल्प लें, कठिन परिश्रम करने का नियम बनायें, ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिष एवं भाग्य पर आश्रित न हों और समाज में फैली भ्रान्तियों व अन्धविश्वास का त्याग करते हुए अपनी व परिवार की उन्नति करें।

(1) **उच्छयस्व महते सौभाग्य।** अ. 3/12/2

भावार्थ - महान सौभाग्य को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ो।

(2) **अप अमतिं दुर्मतिं बाधमानाः।** यजु0 19/84

भावार्थ - हम अज्ञान, दरिद्रता आदि तथा कुमति को दूर करते हुए आगे बढ़ें।

(3) **रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः।** ऋ. 5/47/4

भावार्थ - हम पुरुषार्थी होकर धनों के स्वामी बनें।

(4) **येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।**
तस्मिन् मइन्द्रो रुचिमादधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः।।

भावार्थ- धन वृद्धि की कामना से मैं जिस व्यापार या कार्य को करता हूँ, परमेश्वर उसमें मेरी रुचि तथा उत्साह को बनाए रखे।

(5) **अस्थुरि नो गार्हपत्यानि सन्तु।** ऋ0 6/15/19

भावार्थ - हमारा गृहस्थ तथा तत्सम्बन्धी कार्य सुदृढ़ हो।

(6) **मा चिद अन्यद् विशंसत्।** अ. 20/85/1

हे मनुष्यो! तुम परमेश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य की स्तुति मत करो। मैं भी सर्वव्यापक परमेश्वर की ही स्तुति करूंगा।।

(7) **यदिह घोरं यदिह क्रूरं पापं तत् शान्तम्।।** अ. 19/9/14

भावार्थ - मेरे मन में जो भी घोर तथा क्रूर पाप वासनायें हैं, वे सभी शान्त हो जायें। ऐसा संकल्प मन में करना चाहिये।

आइये! आज नववर्ष के शुभ दिन पर उपरोक्त वेद मंत्रों की आज्ञा और भावना के अनुसार परिश्रम करके परिवार, समाज व राष्ट्र की उन्नति करें।

मंत्र जप एवं उपासना

किसी मन्त्र या धार्मिक शब्द के बार-बार उच्चारण करने को जप कहते हैं। **उपासना** का अर्थ है - ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का चिंतन करना। ईश्वर के वे गुण, जो मनुष्य अपना सकता है, उनको अपने अन्दर धारण करना। ईश्वर के समीप शारीरिक व मानसिक रूप से बैठना और ईश्वर से वार्तालाप करना।

जप एवं उपासना - दोनों से ही शुद्ध ज्ञान, धर्म व आनन्द की प्राप्ति होती है। दोनों क्रियाओं से निष्काम कर्म व परोपकार करने की प्रेरणा मिलती है। उपासना से पहले ओ३म् या गायत्री मंत्र का जप (भावार्थ सहित) करना अधिक लाभदायक होता है।

उपासना- 1. यह दो प्रकार की होती है। (A) **निर्गुण उपासना** - निराकार ईश्वर की उपासना करना।(B) **सगुण उपासना** - 1. ईश्वर को साकार मान कर (अवतार) पूजा करना। यह वेद सम्मत नहीं है। इसका कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं। **2. निर्गुण उपासना** ओ३म् शब्द, गायत्री मंत्र, वैदिक सन्ध्योपासना अथवा अन्य मंत्रों द्वारा (भावार्थ सहित) की जाती है।

मन्त्र जप- 1. केवल वैदिक मंत्र जप से ही लाभ होता है। 2. वैदिक मंत्र के जप से रजोगुण कम होता है और सत्व गुण की मात्रा बढ़ती जाती है।3.जप चार प्रकार से किया जाता है -**(A) वाचिक**-मंत्र या शब्द का उच्चारण ऊंचे, दीर्घ स्वर में करना। **(B) उपांशु** - मंत्र या शब्द का उच्चारण बिना ध्वनि के (केवल होंठ हिलाकर) करना। **(C) मानसिक**-उच्चारण केवल मन में करना। **(D) अजपा** - मानसिक जप का उपासना व व्यवहार काल में स्वयं होने लगना। उपरोक्त क्रम में 3-3 मास तक एक प्रकार के जप का अभ्यास करें।

यह पुस्तक www.manavsanskar.com पर नि:शुल्क उपलब्ध है।

मनुष्य योनि प्राप्त करने के लिए

तीसरा वैदिक उपाय - यज्ञ (हवन) एवं परोपकार

संसार में जितने भी परोपकार के कार्य हैं, वे सब यज्ञ शब्द के वाच्य हैं। यज्ञ का अर्थ है-देव पूजा, संगतिकरण, दान - यह सब यज्ञ ही हैं।

तरांसि यज्ञा अभवन।। अथर्व. 10/10/24

भावार्थ :- यज्ञ मनुष्यों के लिए संसार सागर से पार करने वाली नौका है।

दानवे पुरुणि यत्र वयुनानि भोजना।। अ. 20/94/7

भावार्थ - दानदाता को बहुत ज्ञान तथा भोग्य पदार्थ मिलते हैं।

प्रात:काल नित्य प्रतिदिन हवन करने की प्रक्रिया को देवयज्ञ या हवन कहते हैं। इसमें गाय का घी, देशी जड़ी-बूटियों से मिश्रित सामग्री, आम की समिधा (लकड़ी) आदि वस्तुओं का प्रयोग होता है।

वेदों में ईश्वर ने मनुष्य को प्रतिदिन वैदिक विधि से यज्ञ (हवन) करने का उपदेश दिया है। वैदिक यज्ञ विधि सरल है, इसको **वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि** पुस्तक पढ़कर सात दिन में ही सीखा जा सकता है। हवन गायत्री मन्त्र द्वारा भी किया जा सकता है। दोनों विधियों का वर्णन (मंत्र उच्चारण हेतु सहायता के साथ) पुस्तक में सरल भाषा में दिया गया है।

यज्ञ करने के लाभ - 1. यज्ञ एक वैज्ञानिक क्रिया है। यह प्रदूषण को दूर करने, अनेक रोगों के वातावरण में उपस्थित कीटाणुओं को नष्ट करने के साथ-साथ मनुष्य के अन्त:करण को ईश्वर से जोड़ता है। 2. हवन करने से समाज सेवा व दान करने की प्रेरणा मिलती है। 3. मनुष्य मानसिक रोगों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, भय, अहंकार) से मुक्त होता चला जाता है। अगले जन्म में मनुष्य योनि का अधिकारी बनता है। 4. मनुष्य सद्विचार, सत्कर्म व आनन्द की ओर प्रेरित होता है।

वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि पुस्तक www.manavsanskar.com पर नि:शुल्क download हेतु उपलब्ध है।

मनुष्य योनि प्राप्त करने के लिए
चौथा वैदिक उपाय - अपने बड़े-बुजुर्गों की सेवा करना

माता-पिता ईश्वर के साक्षात् प्रतिनिधि माने जाते हैं। अत: उनकी सेवा करना मनुष्य का पहला कर्तव्य है। जो मनुष्य अपने माता-पिता को श्रद्धा भाव से सन्तुष्ट नहीं करता, उनकी सेवा नहीं करता, उनकी आवश्यकताओं को यथाशक्ति पूरा नहीं करता, उनसे अच्छा व्यवहार नहीं करता, उनसे अच्छी व नम्र भाषा में नहीं बोलता, उनसे लड़ाई-झगड़ा करता है, ऐसा व्यक्ति मानव कहलाने का अधिकारी नहीं है। उस पर ईश्वर कृपा कभी भी नहीं होती है।

गृहस्थ में मौजूद अपने सभी बड़े-बुर्जुग, सास-ससुर आदि भी सम्मानीय हैं। उनके साथ भी कठोर भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये। उनकी भी उपेक्षा (तिरस्कार, निरादर) नहीं करनी चाहिये।

बड़ों की सेवा करने से मनुष्य को ईश्वर का आशीर्वाद मिलता है। उसका भाग्य चमकता है। उसकी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति होती है।

सृष्टि का अटल नियम है-**एक हाथ दे, दूसरे हाथ ले।** यदि मनुष्य चाहता है कि उसके बच्चे बुढ़ापे में उसकी सेवा करें तो उसको अपनों से बड़ों की सेवा हृदय से अवश्य करनी चाहिये।

जहाँ तक संभव हो, संयुक्त परिवार में रहें। प्रेम व सुरक्षा की भावना बनी रहती है। पितृ यज्ञ का पालन होता रहता है। बच्चों में सेवा भावना के संस्कार जाग्रत होते हैं। संयुक्त परिवार में रहने के लाभ अत्यधिक हैं-हानि बहुत कम।

मनुष्य योनि प्राप्त करने के लिए
पाँचवा वैदिक उपाय - पशुओं, रोगियों, असहायों पर दया करना

मनुष्य को ईश्वर ने स्वस्थ शरीर, बुद्धि, ज्ञान, साधन, सम्पत्ति आदि सब कुछ दिया है। अतः अच्छे स्वास्थ्य, दीर्घ आयु व सभी प्राणियों की रक्षा के लिए केवल व केवल शाकाहारी भोजन का सेवन ही करना चाहिये। मांसाहार के पाप कर्म से बचना चाहिए।

यदि परिवार में सब कुछ अनुकूल है तो मनुष्य का कर्तव्य बनता है अपने धन में से कुछ भाग पशु-पक्षियों व असहाय लोगों पर भी खर्च करें, उन पर दया करें, उनकी रक्षा करें और पुण्य का भागीदार बनें। यदि मनुष्य इन प्राणियों की रक्षा करेगा तो इससे सारे समाज को लाभ है।

हमारे घर के आसपास गाय, कुत्ता, घोड़ा, बैल, कबूतर, चिड़िया आदि देखने में मिलते हैं। अब इनके पास कोई जंगल, खेत नहीं हैं, इनके पास कोई नौकरी, व्यापार नहीं है। फिर भी ये किसी न किसी रूप में समाज के लिए उपयोगी हैं। हमारा कार्य करते हैं। पर्यावरण को साफ और सुन्दर बनाते रहते हैं। भोजन तो इनको भी चाहिये। अतः इनको नित्य भोजन दें। इनके जीवन की सुरक्षा करें। बहुत पुण्य मिलेगा और यह प्राणी भी आपके साथ हिलमिल कर रहेंगे।

इसी प्रकार मनुष्य को दिव्यांग (शारीरिक रूप से अक्षम लोग), गरीब रोगी, असहाय, युद्ध व दुर्घटना में ग्रस्त व्यक्ति आदि असहाय लोगों की भी सहायता करनी चाहिये। जीवन में पुण्य कमाने के लिए और गृहस्थ में सुख शान्ति प्राप्त करने के लिए यह कार्य आवश्यक हैं। इनकी अनदेखी करना ईश्वर के उपदेशों का उल्लंघन है।

मनुष्य योनि प्राप्त करने के लिए
छठा वैदिक उपाय -
विद्वानों, अतिथियों का सत्कार व सेवा करना

सांई इतना दीजिए-जा में कुटुम्ब समाए।
मैं भी भूखा न रहूँ-अतिथि भी भूखा न जाय।।

धार्मिक, परोपकारी, संन्यासी, पक्षपात रहित विद्वान, शान्त व सर्वहितकारी मनुष्यों के साथ-साथ घर में आये अन्य अतिथियों की अन्न, भोजन आदि से सेवा करना प्रत्येक मनुष्य का मौलिक कर्तव्य है।

मनुष्य को वैदिक विद्वानों के विचार सुनने चाहिएं। विद्वान् वेद को जानता हो, उसका जीवन वेदानुसार हो, चरित्रवान हो, बुद्धिमान हो, परोपकारी हो।

कभी-कभी वैदिक विद्वान को घर बुलाकर उसका आदर-सत्कार करना चाहिए। उसका सत्संग सुनना चाहिए। उसके ज्ञान का लाभ उठाना चाहिये। अपनी शंकाओं का समाधान करना चाहिये। उनको भोजन खिलाना चाहिये। आर्थिक स्थिति के अनुसार अच्छी दक्षिणा और दान देकर पुण्य का भागीदार बनना चाहिये।

अतिथियों, विशेषकर विद्वानों की सेवा करने से मनुष्य के अन्दर विनम्रता का भाव पैदा होता है। हमारा धार्मिक ज्ञान बढ़ता है। परिवार में बच्चों पर अच्छे संस्कार पड़ते हैं। सन्तानें धार्मिक बनती हैं। समाज व राष्ट सही दिशा में उन्नति करता है।

पंच महायज्ञ-सुखी गृहस्थ का आधार

अभी तक अति उत्तम मनुष्य योनि प्राप्त करने के लिए, समाज के सामने निम्न छः वैदिक उपायों को प्रस्तुत किया गया है :-

पहला उपाय	-	यम-नियम का पालन करना	योगदर्शन
दूसरा उपाय	-	शुभ कर्म एवं प्रार्थना-उपासना	ब्रह्मयज्ञ
तीसरा उपाय	-	यज्ञ (हवन) एवं परोपकार	देवयज्ञ
चौथा उपाय	-	माता-पिता व बड़े बुजुर्गों की सेवा करना	पितृयज्ञ
पांचवा उपाय	-	पशु, पक्षियों, रोगियों, असहायों पर दया करना	बलिवैश्वदेव यज्ञ
छठा उपाय	-	विद्वानों, अतिथियों का सत्कार करना	अतिथि यज्ञ

ईजाना स्वर्ग यन्ति। अथर्व.

भावार्थ - यज्ञ करने वाले स्वर्ग (सुख विशेष) प्राप्त करते हैं।

अतः गृहस्थी की सुख शान्ति व गृहस्थी को अगले जन्म में उत्तम योनि प्राप्त करने के लिए पांच यज्ञों का वैदिक परम्परा में विधान किया गया है।

ब्रह्मयज्ञ के द्वारा मनुष्य परमात्मा का चिंतन, मनन, आराधना करता है।

देवयज्ञ के द्वारा मनुष्य अग्नि, वायु, पृथिवी, जल, सूर्य, चन्द्र, अन्तरिक्ष तथा अन्य नक्षत्रादि की पवित्रता व कृतज्ञता हेतु नित्य यज्ञ (हवन) करता है।

पितृयज्ञ के द्वारा मनुष्य माता-पिता एवं गुरुओं की सेवा, सम्मान व उनकी आज्ञा का पालन करता है।

अतिथि यज्ञ द्वारा मनुष्य परिवार में आये विद्वान, अतिथि की वाणी, जल, आसन, भोजन, दक्षिणा आदि से सत्कार करता है।

बलिवैश्वदेव यज्ञ द्वारा मनुष्य पशु, पक्षियों, चीटियों आदि की सेवा करता है। इसके साथ-साथ असहाय, निर्धन की भी आश्रय व धन देकर सहायता करता है।

पंच महायज्ञ करने से गृहस्थ अच्छा बनता है। गृहस्थी दुःखी महसूस नहीं करता, उसमें दुःखों से लड़ने की शक्ति पैदा होती है। घर में आनन्द प्रेम व संगठन होता है। वास्तव में गृहस्थ आश्रम ही स्वर्ग आश्रम है।

धर्म का स्वरूप

स्वर्यद् ज्योतिरभंय स्वस्तिः।। अ. 19/15/4

भावार्थ :- हे परमेश्वर! हमें उस मार्ग से ले चलो जहाँ सुख, ज्योति, अभय तथा विविध रूपों में हमें कल्याण प्राप्त हो।

आजकल धर्म शब्द की हर व्यक्ति की अपनी-अपनी परिभाषा है। कुछ लोग यज्ञ (हवन) करना, मन्दिर या घर में मूर्ति पूजा करना, धार्मिक स्थानों में स्नान करना को भी धर्म मानते हैं। अन्य लोग प्रार्थना करना, ध्यान करना, जप करना, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च में जाना, धार्मिक ग्रन्थ पढ़ना को भी धर्म की श्रेणी में गिनते हैं। निश्चय ही इनका मनुष्य को लाभ मिलता है। लेकिन यह तो कर्मकाण्ड हैं। ईश्वर भक्ति का एक रूप है। तो फिर धर्म किस चीज का नाम है।

धर्म किसी मत, सम्प्रदाय, पंथ या मजहब का नाम नहीं है। न ही किसी वस्तु (धर्म पुस्तक, मूर्ति आदि या व्यक्ति, अवतार, देवता, पैगम्बर, धर्माचार्य) पर विश्वास करने का साधन है। यह जीवन जीने का ढंग है। यह समाज में रहने वाले प्राणियों के कर्मों एवं कृत्यों को ठीक व्यवस्था में लाने का प्रयत्न करता है। उनमें विकास लाता हुआ उन्हें मानवीय अस्तित्व तक पहुँचाने के योग्य बनाता है।

धर्म उन शाश्वत नियमों, विश्वजनीन भावों एवं नैतिक मूल्यों का नाम है जिनके धारण या आचरण से वस्तु या व्यक्ति का भेद मिटता है। विश्व के सभी प्रमुख मत-हिन्दु, पारसी, ईसाइयत, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, सिख इन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं।

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना। लेकिन कुछ विद्वान, व्यक्तिगत स्वार्थ एवं पक्षपात के कारण, उपरोक्त सिद्धान्त को स्वीकार करने में अधिकतर असहयोग देते हैं।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

वैदिक संस्कृति या धर्म-एक जीवन पद्धति

युयोध्यस्मद् द्वेषांसि।। यजु. 12/43

भावार्थ :- हे परमेश्वर हमारे मन के द्वेषभावों को दूर कर दीजिए।

वैदिक संस्कृति संस्कारी एवं नैतिक मूल्यों पर टिकी हुई है। वेद मानव जाति के कर्तव्य का सदुपदेश करता है। इसीलिए वेद **सर्वशान्तिः** का उद्घोष कर विश्व बन्धुत्व की भावना का समर्थन करता है और मनुर्भव मनुष्य बनो का उपदेश देकर **सभी को मनुष्य बनने का सत्परामर्श देता है।** वेद सभी मनुष्यों को मिल-जुलकर रहने का उपदेश देता है। वेदों में परस्पर द्वेष भाव को त्याग करने की शिक्षा मिलती है। वेद किसी प्रकार की भी हिंसा करने के विरुद्ध है। इसीलिए सभी प्राणियों से आत्मवत् व्यवहार करना चाहिए। दूसरों के साथ आत्मा के प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए। यही जीवन पद्धति है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज के 10 नियमों में धर्म की उक्त धारणा का ही स्पष्ट अर्थ दिखाई देता है।

सत्य को धारण करना, सत्य और असत्य में विवेकपूर्ण कर्म करना, संसार का उपकार करना, प्रीतिपूर्वक यथायोग्य व्यवहार करना, अविद्या का नाश करना, सभी मनुष्यों की उन्नति की कामना, और सर्वहितकारी कार्यों/विषयों में मनमाने ढंग से आचरण न करना ही आर्यसमाज के नियमों में दर्शाया गया है। वस्तुतः यही सार्वभौम और शाश्वत धर्म है। इसी धर्म में विश्व के सम्पूर्ण मानवों का हित निहित है। यह बिना भेद भाव के मानव जाति द्वारा धारण करने में समर्थ है। विश्व का कोई भी धर्म गुरु इसे नकार नहीं सकता।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

धर्म-कर्म अर्थात् धर्माचरण

सुगा ऋतस्य पन्थाः।। ऋ. 8/31/13

भावार्थ :- सत्य के मार्ग सरलता से चलने (प्राप्त करने) योग्य हैं।

मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है और फल भोगने में परतन्त्र! कर्म करने का अधिकार केवल मनुष्य मात्र को है। मनुष्य योनि कर्म योनि है। शेष सब भोग योनियाँ हैं। गीता में भी मनुष्य को योगयुक्त होकर सम बुद्धि से कर्म करने का आग्रह किया गया है।

''सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।'' - स्वामी दयानन्द-आर्य समाज नियम 5

उपरोक्त नियम द्वारा बताया गया है कि मनुष्य को केवल सत्य पर आधारित ही कर्म करने चाहिए। यही धर्म-कर्म है और जो कर्म सत्य पर आधारित न हो, वह धर्म नहीं।

कोई कार्य धर्मानुसार है अथवा नहीं-इसके लिए वेद मनुष्य का मार्गदर्शन करता है वेद में धर्म-कर्म की निम्न ग्यारह शाखायें बतायी गई हैं। (1) कर्तव्य धर्म, (2) सदाचार धर्म, (3) दया धर्म, (4) न्याय धर्म, (5) सामाजिक एवं व्यवहारिक धर्म, (6) अन्तः पवित्रता धर्म, (7) भौतिक अर्थात् शरीर निष्ठा धर्म, (8) आध्यात्मिक धर्म, (9) साधनामय जीवन धर्म, (10) ईश्वर परक धर्म और (11) राष्ट्रपरक धर्म।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

कर्तव्य धर्म

मनुष्य समाज जिन भौतिक नियमों के आधार पर चलता है, उन नियमों के संग्रह का नाम कर्त्तव्य धर्म है। नैतिकता के नियमों के बिना यह समाज कदापि नहीं चल सकता। नैतिकता के यह नियम ही कर्त्तव्य धर्म कहलाते हैं। नैतिकता का पहला नियम है कर्त्तव्य का पालन। यदि व्यक्ति कर्त्तव्य के पालन को धर्म का एक अंग समझ ले तो बहुत सी सामाजिक, राष्ट्रीय समस्याओं का हल हो सकता है।

विश्व में बहुत से राष्ट्र/देश हैं जो कर्त्तव्य पालन को धर्म समझते हैं।

यन्मातापितरौ क्लेशं सहैते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।। (मनु.)

भावार्थ- मनुष्य के उत्पन्न होने में जो क्लेश माता-पिता सहन करते हैं, उनका बदला सौ वर्ष के उपकार करने से भी नहीं हो सकता है।

मनुष्य का एक बड़ा कर्त्तव्य है माता-पिता की सेवा करना, उनकी आज्ञा का पालन करना। उनको प्रकृति का उपहार समझना-भार नहीं।

माता-पिता की सेवा आदि का ढंग - 1. प्रातःकाल उठकर माता-पिता को नमस्ते करना। उनका आशीर्वाद लेना। 2. उनकी आज्ञा का पालन करना, असहमति होने पर उनसे क्रोध भरी और अपमानजनक बात न कहना। यदि वे गलती पर हैं तो उन्हें शांतिपूर्वक समझाना। 3. बूढ़े माता-पिता को पहले भोजन कराना अथवा उनके साथ इकट्ठा बैठकर भोजन करना। 4. प्रतिदिन उनके साथ व्यक्तिगत रूप से, टेलीफोन पर या फेसबुक पर कुछ समय मानसिक धरातल के अनुसार बातचीत करना। 5. बुढ़ापे में उन्हें फल, मिठाई, वस्त्र तथा अन्य वस्तुएं देकर प्रसन्न रखना। 6. बीमार माता-पिता को औषधि, फल, शारीरिक सेवा द्वारा तृप्त करना। 7. गरीब माता-पिता को प्रति मास पर्याप्त मात्रा में कुछ राशि देना ताकि वे स्वेच्छा से खर्च कर सकें, दान दे सकें। वे बच्चों के आगे हाथ न फैलायें। 8. उनकी सन्तानें आपस में प्रेम भाव से रहें, लड़े नहीं-यह भी उनकी सेवा है। माता-पिता की सेवा कर्तव्य धर्म भी है और पितृ यज्ञ भी।।

सदाचार धर्म

सत्यस्य नावः सुकृतमपीपपन।। ऋ॰ 9/37/1

भावार्थ :- सत्य की नौका सुकर्म करने वाले को पार लगा देती है।

आचरण जीवन की सम्पदा है। सुन्दरता है। केवल आचरण वाला व्यक्ति ही मर्यादा का पालन कर सकता है। इसलिए चरित्र एवं संस्कार निर्माण में माता-पिता, स्कूल, आर्ष ग्रन्थ महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। महापुरुषों के जीवन-चरित्रों से भी सत्याचरण की सुन्दर प्रेरणा मिलती है। उनके गुणों को, मनुष्य को, अपने अन्दर धारण करके चरित्र निर्माण शीघ्र व तीव्र गति से हो सकता है। **अतः महापुरुषों के चित्र पूजा के बजाय चरित्र पूजा करनी चाहिये।**

सदाचार का प्रथम आधार सत्याचरण है। जो व्यक्ति सत्याचरण करता है। वह निर्भय होकर जीवन व्यतीत करता है। मानसिक रोगों-काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, भय, अहंकार आदि से पीड़ित नहीं होता है। समाज में उसको प्रतिष्ठित व्यक्ति का सम्मान मिलता है।

सत्यार्थ प्रकाश एवं आर्यसमाज के दस नियमों में से प्रथम पांच नियमों में सत्य की महिमा को दर्शाकर आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने सदाचार के धर्म का पालन करते हुए समाज को एक अति उत्तम मार्ग दिखाया है।

अपनी सभी इन्द्रियों पर संयम रखना और दूसरों में दोष न देखना भी सत्याचरण में आता है। संयमी व्यक्ति अनुशासन में रहकर ऊपर उठता है और दूसरों में दोष देखने के बजाय स्वयं का निरीक्षण करता है। अपने दोषों को दूर करता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

बुरा जो देखन मैं गया- बुरा न मिलया कोय।
जब देखा अपने आप को - मुझसे बुरा न कोय।।

अतः मनुष्य को ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये :- ''प्रभु मेरे मन में शान्ति हो, ज्ञान का प्रकाश हो, धर्माचरण हो, न्यायपूर्वक जीवन व्यतीत करने की व्यवस्था हो, सत्याचरण हो, प्रभु! आप पर विश्वास हो।''

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

दया-धर्म -1

मा पृणन्तो दुरितमेन आरन। ऋ. 1/25/7

भावार्थ :- दानी व्यक्ति पाप तथा दुर्गति को प्राप्त नहीं करता।

किसी व्यक्ति या प्राणी के दु:ख में, उसकी पीड़ा में, उसकी उलझन में, उसकी दुविधा में, उसके संकट में यदि मनुष्य का मन दु:खी हो जाये तो मन की उस दशा का नाम दया है और फिर उस समय दया से भरे मन की क्रिया का नाम परोपकार है। इसे ही दया धर्म कहते हैं।

परोपकार का अर्थ है दूसरे की भलाई करना। यदि शक्ति रखते हुए भी मनुष्य दूसरों के काम नहीं आता, समाज के उपकार में सहयोग नहीं देता तो उसके जीवन पर धिक्कार है। और जो मनुष्य शरीर को धारण करके दूसरे प्राणियों को कष्ट देता है वह संसार में अवश्य ही दु:खों को प्राप्त होता है।

प्रकृति से सीखना चाहिए। यह सदा से परोपकार करती चली आ रही है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आकाश, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, फल, फूल, पालतू पशु, पक्षी आदि भी मनुष्य के कल्याण के लिए दिन रात प्रगतिशील हैं।

परोपकार से मनुष्य के कष्ट दूर होते हैं, सन्तोष व शांति मिलती है, पद पर उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, शत्रुता की भावना समाप्त होती है, ईश्वर भक्ति में मन लगता है, ईश्वर की समीपता प्राप्त होती है।

अत: मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह वाद-विवाद को छोड़कर तन, मन और धन से प्रतिदिन यथाशक्ति उपकार करता रहे। निर्धन, असहाय, अज्ञानी मनुष्यों की धन, ज्ञान, परामर्श से सहायता करता रहे। पशु-पक्षियों को भी खाना देकर उनकी सेवा करे, उनकी रक्षा भी करे और पुण्य का भागीदार बने।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

दया धर्म-2

भर्तृहरि जी महाराज ने उपकार की दृष्टि से मनुष्यों को चार श्रेणियों में बांटा है-

(1) **देव कोटि :-** जो मनुष्य बिना किसी स्वार्थ के दूसरों की भलाई करता है वह देव कोटि में गिना जाता है। उसका उद्देश्य केवल दूसरों की भलाई करना ही होता है। समाज व राष्ट्र की सेवा करना ही होता है।

(2) **मनुष्य कोटि :-** जो मनुष्य अपना कार्य ईमानदारी से संवारता है और दूसरों के कार्य में भी सहायक होता है, वह मनुष्य कोटि में आता है।

(3) **राक्षस कोटि :-** जो मनुष्य अपना कार्य तो संवार लेता है लेकिन दूसरों का काम बिगाड़ता है या बिगाड़ने में सदैव तत्पर रहता है, ऐसा मनुष्य राक्षस कोटि में आता है।

(4) **नीच कोटि :-** जो व्यक्ति न अपना काम संवारता या बनाता है और न ही दूसरे का बनने देता है-नीच कोटि में आता हे। ऐसा मनुष्य सदैव दूसरों का उपकार (हानि पहुँचाना) करने के लिए तैयार रहता है। किसी उर्दू कवि ने ऐसे व्यक्ति के बारे में लिखा है-

''हम तो डूबे हैं सनम- तुमको भी ले डूबेंगे।''

मित्रो! पशु और पक्षी भी अपने ऊपर किये गये उपकार के प्रति कृतज्ञ होते हैं। मनुष्य तो विवेकशील प्राणी है। उसे तो पशुओं से दो कदम आगे बढ़ना चाहिये। देवकोटि को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

नि:सन्देह देव कोटि में आने वाले व्यक्ति, शासक, राजनेता, धर्म गुरु ही समाज व राष्ट्र की सामाजिक और आर्थिक उन्नति कर सकते हैं।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

दया धर्म-3

परोपकार का अर्थ है दूसरों की भलाई करना, दूसरों के काम आना, दूसरों की सहायता करना। सृष्टि में परमात्मा द्वारा बनायी गई सभी वस्तुएं किसी न किसी रूप में मनुष्य व अन्य प्राणियों के लिए परोपकार का कार्य कर रही है। जब कोई व्यक्ति, समाज सुधारक, जन सेवक नि:स्वार्थ भाव से समाज व राष्ट्र की सेवा करता है-गरीब, असहाय, निर्बल एवं पिछड़े वर्ग के हित के लिए कार्य करता है तो उस समय वह देवत्व की श्रेणी में आ जाता है और दिव्य सुख को प्राप्त करता है।

विश्व में एवं विशेषकर भारतीय समाज में आज जो पुरुष महिलायें देवत्व की श्रेणी में आते हैं उनका हमें हृदय से सम्मान करना चाहिये-उनके कार्यों में नि:स्वार्थ भाव से सहयोग करना चाहिए ताकि भारत में शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति तीव्र गति से हो सके।

परोपकार के तीन मुख्य साधन

1. परामर्श देना :- नि:स्वार्थ परामर्श देने वाला व्यक्ति जब किसी निर्धन या जरूरतमंद को, अपनी शिक्षा और अनुभव के आधार पर कानूनी, आध्यात्मिक, मेडिकल या अन्य उपयोगी सलाह देता है तो वह भी परोपकार करता है। इस श्रेणी में डॉक्टर, वकील, विद्वान, सामाजिक कार्यकर्ता आदि आते हैं।

2. कर्म सिद्धि में सहायता :- किसी के कार्य में नि:स्वार्थ सहायता करना कर्म सिद्धि कहलाता है। जैसे मरीज की सेवा करना, किसी को नौकरी दिलवाना या नौकरी के योग्य बनाना, किसी वृद्ध या अन्धे व्यक्ति को सड़क पार करवाना, दूसरों के झगड़े को प्रेमपूर्वक निबटवाना आदि-आदि।

3. आर्थिक सहयोग/दान देना :- दान करना उपकार है, पुण्य है। इससे मनुष्य में नम्रता आती है, आत्मिक आनन्द मिलता है और परलोक सुधरता है। गरीब बेटी की शादी में मदद करना, गरीब बच्चों की शिक्षा में सहयोग देना, वेद प्रचार हेतु पुस्तकें बांटना, वृद्धाश्रम, अनाथालय, गुरुकुलों में दान देना आदि उत्तम प्रकार के साधन हैं।

न्याय धर्म अर्थात् समाज धर्म

न्याय का ठीक-ठीक अर्थ क्या होना चाहिये- यह मनुष्य के लिए सदैव एक चिंतन का विषय रहा है। न्याय वह सद्गुण है जो किसी भी समाज में संतुलन लाता है या उसका परीक्षण करता है। पक्षपात रहित सत्य के आधार पर चलना न्याय धर्म है।

न्याय की प्राप्ति हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। किसी भी व्यक्ति का दुर्व्यवहार, जिससे किसी दूसरे व्यक्ति को हानि हो, अन्याय है।

जिस सद् व्यवहार के करने को व्यक्ति बाध्य हो और यदि वह ऐसा करता है तो वह न्याय धर्म का पालन करता है अन्यथा अन्याय करता है। उदाहरण (1) जब पिता अपने पुत्रों-पुत्रियों को अपनी सम्पत्ति के विभाजन में पक्षपात करता है तो अन्याय करता है। (2) यदि पिता समर्थ होने पर भी सन्तान को सुयोग्य बनाने का प्रयत्न नहीं करता, उनकी शिक्षा पर ध्यान नहीं देता तो वह अन्यायकारी है। (3) जब अध्यापक या विद्यालय विद्यार्थियों को कर्तव्यपूर्वक ठीक-ठीक नहीं पढ़ाता तो वह न्याय नहीं करता है। (4) डाक्टर या वैद्य यदि मरीज का इलाज ठीक ढंग से, मरीज के हित में, नहीं करता या लालच में गलत-सलत महंगी दवाईयाँ देता है, अनावश्क आप्रेशन करता है तो अन्याय रूपी पाप का भागीदार बनता है। (5) वकील यदि अपने मुवक्किल (client) का केस ठीक ढंग से तैयार नहीं करता तो अधर्म का कार्य करता है। (6) यदि राजनेता या अधिकारी समाज या राष्ट्र हित में निर्णय नहीं लेता तो पाप कर्म करता है। (7) यदि पण्डित, पुरोहित, विद्वान, ज्योतिषी, कथावाचक जनता को वेद के विरुद्ध ज्ञान बांटते हैं, उन्हें भ्रमित करते हैं, जड़ पूजा को प्रोत्साहन देते हैं तो नि:सन्देह ईश्वरीय दंड से नहीं बच सकते हैं। स्वार्थवश गलत निर्णय देने पर न्यायाधीश भी पाप करता है।

न्याय धर्म का पालन करने से शान्ति मिलती है, परलोक सुधरता है।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

सामाजिक धर्म एवं व्यवहारिक धर्म - 1

एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ समाज में कैसा सम्बन्ध हो, इसको सामाजिक या व्यवहारिक धर्म कहते हैं। मनुष्य को समाज में प्रेमपूर्वक रहना चाहिये। कोई ऐसा कार्य या व्यवहार दूसरे के साथ नहीं करना चाहिये जिस व्यवहार को वह अपने लिए अनुचित या बुरा समझता है। यही सामाजिक धर्म है। इसके पालन न करने के कारण समाज में अराजकता फैलती है। एक कवि के शब्दों में -

प्रेम से मिलकर चलो, बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भांति तुम, कर्त्तव्य के मानी बनो।।
हों विचार समान सबके, चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर, भाग्य पा सब नेक हों।।
हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से, जिससे बढ़े सुख सम्पदा।।

अत: परिवार, समाज व राष्ट्र संगठन के लिए मनुष्य का कर्तव्य है कि क्रमश: अपने परिवार को साथ लेकर चले, मित्रों को साथ लेकर चले, समाज में सभी वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को साथ लेकर चले। (वर्णावस्था गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार-न कि जन्म के अनुसार)

आइये! हम इकट्ठे चलें, एक दूसरे को साथ लेकर चलें, सभी की उन्नति में अपनी उन्नति समझें और सामाजिक धर्म का पालन करें।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

सामाजिक धर्म -2

वैदिक वर्ण व्यवस्था का स्वरूप

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह गांव और नगरों में हजारों मनुष्यों के साथ रहता है। इसीलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने समाज हित में एक सुन्दर विधान बनाया जिसका नाम वर्णाश्रम है। वर्ण चार हैं-

ब्राह्मण - अच्छे स्वभाव और विद्या-प्रिय व्यक्तियों को समाज में ज्ञान बुद्धि का कार्य सौंपा गया और उनको ब्राह्मण कहा गया। इसका कर्तव्य है-विद्या पढ़े, पढ़ावे, त्यागी हो, तपस्वी हो, समाज को सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रेरित करे। **क्षत्रिय** - जो लोग बलवान हों, दूसरों की रक्षा कर सकते हों, विषय भोगी न हों, लालची न हों, गरीबों की रक्षा और राष्ट्र के नियमों का पालन करने वाले हों ऐसे लोगों को क्षत्रिय कहा गया।

वैश्य :- खेती करना, व्यापार करना, देश की वस्तुओं को अन्य देशों में पहुंचाना, देश और जाति के धन में समृद्धि करना आदि वैश्य लोगों का कार्य था। इंजीनियर, कागीगर, सुनार, कुम्हार, बढ़ई, लाहौर-सभी इसी श्रेणी में आते हैं।

शूद्र :- जो व्यक्ति स्वयं कुछ करने की योग्यता नहीं रखते थे, उनको ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के कामों में मदद करने को कहा गया और वे शूद्र कहलाये। **वर्ण व्यवस्था का आधार** व्यक्ति का गुण, कर्म, स्वभाव है जन्म के अनुसार नहीं। हिन्दू जाति में वर्तमान में पायी जाने वाली जात बिरादरियाँ वर्ण नहीं हैं। वर्तमान जात बिरादरियाँ भेदभाव रखती हैं और जन्म पर निर्भर हैं। यह वर्ण व्यवस्था का दुरुपयोग है। वर्णों का गुणों के आधार पर मानना और जानना ही सामाजिक धर्म है।

महाराज मनु शूद्रों को अस्पृश्य, निन्दित अथवा घृणित कभी नहीं मानते थे।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

अन्तः पवित्रता धर्म

अन्तरात्मा की वर्तमान में स्थिति

आजकल मनुष्य शरीर में स्थित आत्मा रूपी अतिथि की दशा बहुत ही दयनीय है, खेदजनक है, सोचनीय है। मनुष्य शरीर को ही सब कुछ मान रहा है और **शरीर के चालक ''आत्मा का निरादर कर रहा है।** अधिकांश मनुष्य सारी आयु भौतिक विषयों को भोगने, देह को सजाने और धन एकत्रित करने में ही लगे रहते हैं और यह आत्मा हृदय आसन पर भूखा-प्यासा बैठा रहता है।

इस अतिथि (आत्मा) को भोजन देने के लिए, उसकी बात सुनने के लिए उसकी बात/सलाह/चेतावनी पर ध्यान देने के लिए वर्तमान मनुष्य के पास समय नहीं है। इस शरीर की मृत्यु के समय जब वह अतिथि देह छोड़ता है तो भूखा-प्यासा तिरस्कृत होकर अन्य **मध्यम या नीच योनियों में भटकता रहता है।**

मनुष्य को यह शरीर अपनी अन्तरात्मा की शुद्धि करने के लिए मिला है, मोक्ष की ओर प्रेरित होने के लिए मिला है-धन इकट्ठा करने व भोग विलास के लिए नहीं। आत्मा की शुद्धि करना ही अन्तःपवित्र धर्म है। विचारों में शुद्धता और पवित्रता लाने से आत्मा स्वस्थ होती है, बलवान होती है, पवित्र होती है और विचार शुद्ध व पवित्र होते हैं योग दर्शन में बताये गये प्रथम दो सोपान-यम और नियम का पालन करने से, पंच महायज्ञ को जीवन का अंग बनाने से। विचारों में शुद्धता और पवित्रता लाना ही आत्मा का भोजन है।

आत्मा उपदेश भी यही देती है लेकिन मनुष्य भोग विलासिता के कारण, उसकी बात सुनता ही नहीं है। इसके अतिरिक्त मनुष्य जब भी कोई गलत काम करता है तो आत्मा एवं परमात्मा उसे लज्जा, भय, शोक के रूप में चेतावनी दे देता है। यह आवाज न सुनने पर भी आत्मा/परमात्मा अपनी आवाज पुनः सुनाने में पीछे नहीं हटता, परन्तु यह धीमी पड़ जाती है और इस संसार रूपी नगाड़खाने में तूती की आवाज कौन सुनता है।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

राष्ट्र धर्म

धर्म बड़ा है पर राष्ट्र प्रथम है। धर्म का एक अभिन्न अंग है **राष्ट्र धर्म।** आज अधिकतर भारतीय राष्ट्र धर्म को भूलते जा रहे हैं। हम धर्म को, अपने साहित्य को, अपनी संस्कृति को, अपने नैतिक मूल्य को, अपने कर्तव्यों को बिसारते जा रहे हैं-केवल व केवल स्वार्थवश।

ऐसा प्रतीत होता है-राष्ट्र की चिन्ता न नागरिकों को है, न नेता को, न प्रजा को, न राजनीतिज्ञ को, न धर्म पथ प्रदर्शक को। सभी को होड़ लगी है धन जुटाने की, केवल व्यक्तिगत उन्नति करने की, चाहे वह वैध ढंग से हो या अवैध ढंग से और इसके साथ-साथ सामाजिक उन्नति की उपेक्षा करने की, अनादर करने की।

''संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।''

आर्यसमाज का नियम नं0 6

उपरोक्त नियम का चिंतन करने पर आर्यसमाज की भूमिका पर भी प्रश्न चिह्न लगता जा रहा है। आज कोई भी राष्ट्र की सेवा नहीं करना चाहता-सामाजिक परिस्थितियों से ऐसा ही लगता है। किसी को सत्ता चाहिये, किसी को सत्ता के आड़ में धन, तो किसी को अपने मित्रों व रिश्तेदारों को लाभ पहुँचाना। दूसरी तरफ हर व्यक्ति यही चाहता है कि कौन सी सरकार से किस प्रकार का लाभ लिया जाय। **बेशक वह सरकार भ्रष्ट हो, राष्ट्र की हानि हो-हमें राष्ट्र से क्या लेना-देना।**

मित्रो! अब भी समय है जागने का। जागो और राष्ट्र धर्म का पालन करते हुये अपनी आने वाली पीढ़ियों के उपकार हेतु, भारतीय चुनावों (लोक सभा, विधान सभा, पंचायत) में लोक सभा के लिए केवल उसी पार्टी, राजनेता, शासक को वोट दें, जो योग्य है, चरित्रवान है, बिना किसी स्वार्थ के समाज व राष्ट्र की सेवा, सामाजिक व आर्थिक उन्नति में पूर्ण रूप से योगदान दे रहा है।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

आध्यात्मिक धर्म

ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना आध्यात्मिक धर्म है।

मनुष्य को यह सुन्दर, अद्‌भुत शरीर परमात्मा ने (1) शारीरिक पुष्टि, (2) आत्मा-परमात्मा का चिंतन, (3) परोपकार-इन तीन कार्यों के लिए दिया है। केवल मनुष्य योनि में ही व्यक्ति शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति कर सकता है, अन्य किसी योनि में नहीं। यदि मनुष्य शरीर की पुष्टि, उदर पूर्ति के साधन एवं घर गृहस्थी के कामों में ही सारा समय निकाल देता है, आत्म चिंतन, परमात्म का चिंतन, परोपकार नहीं करता तो उसके जीवन का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। सुन्दर शरीर, रूपवती पत्नी, यश, उत्तम चरित्र, अपार धन सम्पत्ति रहते हुए भी यदि निराकार परमेश्वर की भक्ति में मन नहीं लगता है तो इन पदार्थों के रहने का कोई लाभ नहीं। अत: मनुष्य जीवन की सार्थकता इसी में है कि जीवन के सब कामों को करते हुए मनुष्य सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वरक्षक, सर्वेश्वर, निराकार-सृष्टिकर्ता परमेश्वर का भी चिंतन निरन्तर करता रहे।

जीवन में केवल नैतिकता अपनाने से एकांगी विकास होता है। पूर्ण विकास के लिए नैतिकता के साथ-साथ ईश्वर उपासना भी आवश्यक है। जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों के सुख के लिए दिये हैं, उसका ऋण भूल जाना, ईश्वर के सत्य स्वरूप को न मानना, उसकी आज्ञाओं की अवहेलना करना, कृतघ्नता और मूर्खता है।

मदन अनेजा द्वारा लिखित प्रार्थना उपासना विधि पुस्तक में वैदिक प्रार्थना उपासना के लाभ व इसकी सभी विधियों का वर्णन विस्तार रूप से सरल हिन्दी में दिया गया है। पुस्तक www.manavsanskar.com पर नि:शुल्क download करें।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

साधनामय जीवन धर्म

साधनामय जीवन या यज्ञमय जीवन का तात्पर्य है नियमित जीवन। इसमें पंचमहायज्ञ का पालन एवं आश्रम व्यवस्था के अनुसार जीवन व्यतीत करना आता है।

(1) **ब्रह्मयज्ञ** शुभ कर्म एवं प्रार्थना-उपासना करना।
(2) **देवयज्ञ** यज्ञ (हवन) करना, परोपकार करना।
(3) **पितृयज्ञ** माता-पिता व बुजुर्गों की सेवा करना।
(4) **बलिवैश्वदेवयज्ञ** पशु, पक्षियों, रोगियों, असहायों पर दया करना।
(5) **अतिथि यज्ञ** विद्वानों व अतिथियों का सत्कार करना।

हमारे ऋषि मुनियों एवं समाजशास्त्रियों ने अनुशासित, त्यागभाव एवं सभ्यता से जीने के लिए, मानव जीवन को चार भागों में बांटकर एक वैज्ञानिक समाज की संरचना प्रस्तुत की है।

(1) ब्रह्मचर्य आश्रम :- जन्म से लेकर 25 वर्ष तक की आयु को ब्रह्मचर्य आश्रम कहते हैं। इसमें विद्यार्थी द्वारा स्वाध्याय व तप करके अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक आदि शक्तियों का विकास करना होता है। विषय वासनाओं को समाप्त करके ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में जाने का अधिकारी बनता है।

(2) गृहस्थाश्रम :- अवधि 25 से 50 वर्ष। इसमें पितृऋण, देवऋण, ऋषिऋण से छूटने का उपाय बताया है। श्रेष्ठ सन्तानों को प्राप्त करके उन्हें समाज व राष्ट्र कार्यों में प्रेरित करना, धर्मपूर्वक जीविका कमाना इसका मुख्य उद्देश्य है।

(3) वानप्रस्थ आश्रम :- अवधि 50 से 75 वर्ष। उद्देश्य - समाज व राष्ट्र की सेवा करना।

(4) संन्यास आश्रम :- पुत्रेषणा, लोकेषणा, वित्तेषणा का त्याग करके समाज सेवा करना।

पंच महायज्ञ एवं आश्रम व्यवस्था - दोनों का पालन करने से व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र सुरभित, पल्लवित और पुष्पित होता है। यही साधनामय जीवन धर्म है।

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

ईश्वर परक धर्म

सृष्टि के आदि में ईश्वर ने वेद ज्ञान मनुष्य को दिया है कि हे मनुष्य! संसार में तूने कैसे व्यवहार करना है, क्या करना है और क्या नहीं। वेद पूर्ण ज्ञान है जो कल भी सत्य था, आज भी सत्य है और कल भी सत्यता की कसौटी पर पूरा उतरेगा। यह नित्य ज्ञान है जिसके बिना व्यक्ति अधूरा है। इसलिए वेद, वेदानकुल साहित्य और सत्य विद्याओं का ज्ञान ईश्वर परक धर्म कहलाता है। मनुष्य को केवल वेदानुकूल साहित्य का ही स्वाध्याय करना चाहिए। उसी का पालन करना चाहिये।

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव तत वः।
गाय गायत्रमुक्थ्यम्।। (ऋ॰ 1/38/14)

भावार्थ :- वेद मनुष्य को प्रेरणा देता है कि तू वेदवाणी का स्वाध्याय कर। वेदवाणी के स्वाध्याय से जो ज्ञान तुझे प्राप्त हो, तू उसे फैला जैसे बादल वर्षा फैलाता है। वेद वाणी को पढ़ और पढ़ा।

मित्रो!

वैदिक विचार संग्रह से जो हम ऋषियों-मुनियों का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं, उसे केवल अपने तक ही सीमित न रखें। उसका हृदय से अधिक से अधिक प्रसार करें ताकि समाज में फैली हुई विभिन्न भ्रान्तियों का निवारण हो सके और समाज के सभी वर्ग के लोग अंधविश्वास और अंधकार से मुक्ति पा सकें। ईश्वरीय आनन्द को प्राप्त कर सकें- मदन अनेजा

साभार-पुस्तक - धर्म-कर्म, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

मोक्ष-मुक्ति प्राप्ति का उपाय

मनुष्य योनि में ही मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा सकता है। केवल मनुष्य शरीर ही मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त करने का साधन है। मोक्ष प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प, मेधा बुद्धि और शारीरिक व आत्मिक बल चाहिये और इन तीनों का एक साथ कार्य करना भी आवश्यक है।

संकल्प हमेशा मन द्वारा होता है। मन के बिना कर्म-इन्द्रियाँ या ज्ञान-इन्द्रियाँ-कोई भी कार्य करने में असमर्थ होती हैं। मन के द्वारा ही व्यवहारिक व पारमार्थिक कार्य सम्पन्न होते हैं। इसलिए मोक्ष प्राप्त करने के लिए मन द्वारा हमेशा शुभ एवं दृढ़ संकल्प करना चाहिए और संकल्प कैसा हो-परहित वाला, परोपकारी, कल्याणकारी।

दृढ़ संकल्प के बाद बुद्धि संकल्प को क्रियात्मक रूप देती है। बुद्धि मेधावी होनी चाहिए और मेधावी बुद्धि बनती है यम-नियम के पालन से, पंच महायज्ञ के अनुष्ठान से। इसलिए हम ईश्वर से मन और बुद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं कि ये केवल वही रूपरेखा बनाये जिससे इन्द्रियाँ शुभ कर्म करें, परोपकार का कार्य करें-अशुभ कार्य नहीं।

अब बारी आती है बल की। बुद्धि द्वारा बनाई गई रूपरेखा के अनुसार इन्द्रियों से काम करना। सदैव परोपकार करना।

मित्रो! इन्द्रियाँ जभी ठीक कार्य करती हैं जब मनुष्य मानसिक व शारीरिक स्तर पर पूर्ण रूप से स्वस्थ हो और स्वस्थ होने के लिए मनुष्य का आहार-विहार-विचार सभी सात्विक होने चाहिए। यम नियम का पालन होना चाहिए।

यही है मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र वैदिक उपाय!

वेद माता एवं चार वेद

मुझे वेद धर्म से हे पिता, सदा इस तरह का प्यार दे।
कि न मोड़ूं मुख कभी उससे मैं, चाहे कोई कष्ट हजार दे।।

वेद भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत है, भण्डार है, अमूल्य सम्पत्ति है। वेद अनादि हैं, नित्य है, अविनाशी है। **वेद और पुराण में भेद है। वेद धर्म ग्रन्थ है तो पुराण इतिहास ग्रन्थ। वैदिक विद्वान पुराण को भ्रम और झूठ का एक पुलिंदा मानते हैं।** जो मनुष्य वेद से अनजान है, अपरिचित है वह कुछ भी नहीं जानता- ऐसा विद्वानों और दार्शनिकों का मत है। अत: वेद को जानना व उसके अनुरूप आचरण करना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य है।

वेदों के सभी विषय मानव मात्र के मार्गदर्शक हैं। मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त कब क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए-प्रात:काल जागरण से रात्रि शयन पर्यन्त सम्पूर्ण चर्चा और क्रियाकलाप आदि ही वेदों के कुछ विषय हैं। **इस प्रकार वेद का अन्तिम लक्ष्य मनुष्यों की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना है।**

वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने-वायु ऋषि को यजुर्वेद, अग्नि ऋषि को ऋग्वेद, आदित्य ऋषि को सामवेद और अंगिरा ऋषि को अथर्ववेद का ज्ञान-उन्हें समाधि अवस्था में दिया और फिर यह ज्ञान आगे चलता गया-आज तक जीवित है।

यजुर्वेद में कर्मकाण्ड, ऋग्वेद में ज्ञान, सामवेद में उपासना और अथर्ववेद में विज्ञान के विषय हैं।

वेद को माता के पवित्र नाम से जाना जाता है।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयु: प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।। अथर्ववेद - 19/71/1

भावार्थ- पापों का शोधन करने वाली और मनोरथों को परिपूर्ण करने वाली वेद माता की हम स्तुति करते हैं।

साभार-पुस्तक - मायका, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

वैदिक संस्कृति - सबका साथ, सबका विकास

''प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।''

(महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज-नियम सं0-9)

भारत वर्ष में गरीब, अनपढ़, पिछड़े वर्ग और आर्थिक असमानताओं के साथ-साथ लोगों का सामाजिक और आध्यात्मिक शोषण को देखते हुए ऋषि दयानन्द ने लगभग 143 वर्ष पूर्व **सत्यार्थ प्रकाश** की रचना की, आर्यसमाज की स्थापना की। मूर्ति पूजा, अवतारवाद, बलि, झूठे कर्म काण्ड व अन्धविश्वासों जैसे कुरीतियों को समाज में समाप्त करने का प्रयास किया और **आर्यसमाज के नियम 9 में ही सबका साथ सबका विकास की बात कही है।**

वेदों के अनुसार कार्य करना, व्यवहार करना, आचरण करना, जीवन में यम-नियम का पालन करना, पंच महायज्ञ का अनुष्ठान करना, केवल निराकार परमात्मा की ही भक्ति करना व सदाचार आदि वैदिक संस्कृति कहलाती है।

पिछड़े वर्ग के लोगों का, गरीबों का, असहायों का, महिलाओं का भला सोचना, उनकी सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक उन्नति में सहयोग देना, उनको वैदिक ज्ञान देकर उनकी आध्यात्मिक शंकाओं का निवारण करना आदि भी सदाचार और वैदिक संस्कृति का हिस्सा हैं।

आइये! हम अपना जीवन वैदिक संस्कृति के अनुरूप चलाने का संकल्प लें। ऋषि दयानन्द महाराज के सपने को साकार करें और अपनी भविष्य की पीढ़ी को समाज में होने वाली असमानता, अराजकता और चरित्रहीनता के गड्ढे में गिरने से बचायें।

उपकार, परोपकार एवं सेवा की विधि

अपनी शक्ति, अपना शरीर, अपना धन, अपनी बुद्धि को दूसरे व्यक्ति की भलाई के लिए प्रयोग में लाना उपकार है, परोपकार है, सेवा है।

सेवा की विधि

1. सर्वप्रथम व्यक्ति अपनी सेवा स्वयं करे। यदि वह किसी नशीले पदार्थ का प्रयोग करता है या किसी अन्य लत से ग्रसित है तो इससे दूर रहने का संकल्प ले व उसे पूरा करे। 2. यदि परिवार या मित्रों में से कोई व्यक्ति उपरोक्त समस्या से पीड़ित है तो उसकी मदद करें। 3. जो पदार्थ मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं, उनका सेवन न करें। 4. प्रतिदिन माता-पिता की सेवा करें, उनका सम्मान करें, जहां तक संभव व उचित हो उनकी आज्ञा का पालन अवश्य करें।5.प्रतिदिन पशु-पक्षियों को यथाशक्ति भोजन दें, उन्हें तंग न करें। 6. प्रतिदिन अथवा जब अवसर मिले, किसी विद्वान, संन्यासी, महात्मा या भिखारी या गरीब को खाना खिलायें। 7. तन, मन, धन से, समाज में जिसकी जैसी वास्तव में आवश्यकता हो, उसकी वैसी सेवा, अपनी क्षमता के अनुसार अवश्य करें। अवसर को हाथ से न जाने दें। उदाहरण - (1) गरीब विद्यार्थी की शिक्षा में सहायता करना, (2) गरीब रोगी को दवाई दिलाकर मदद करना, (3) गरीब व्यक्ति को उसकी जीविका के साधन उपलब्ध कराने में सहायता करना, (4) डॉक्टर द्वारा गरीब रोगियों का निःशुल्क उपचार करना, (5) वकील द्वारा निर्धन व्यक्ति को न्याय दिलाने में सहयोग देना, (6) अनाथालयों व गुरुकुलों में आर्थिक सहयोग देना। 8. बूढ़ों व अन्धों को सड़क पार करवाना, अस्पताल में जाकर रोगियों का उपचार हेतु उनका मार्गदर्शन करना आदि तन द्वारा सेवा है। 9. विद्वानों, वकीलों, डॉक्टरों द्वारा दुःखी व्यक्तियों (मुख्य रूप से महिलाएं) को निःशुल्क परामर्श देना। 10. वेद का प्रचार-प्रसार करके समाज में फैली शंकाओं, भ्रान्तियों, कुरीतियों का निवारण करना।

तप का महत्व

जिस प्रकार स्नान करने से मनुष्य के शरीर में निखार आ जाता है। पुराने मकान की मरम्मत करने से, उसमें रंग, रोगन, सफेदी करवाने से, वह चमक उठता है। इसके विपरीत यदि शरीर और मकान की देखभाल ठीक-ठाक न की जाये तो उनकी आयु कम होने लगती है। यदि पीतल के बर्तन, सजावट के समान आदि की मिट्टी भी समय-समय पर पोंछ दी जाये और उस पर ब्रासो मल दिया जाये तो उनका भी निखार बना रहता है। इस प्रकार सांसारिक वस्तुओं को चमकाने, निखारने व उनकी ठीक-ठीक देखभाल करने से, उनके अस्तित्व को बढ़ाया जा सकता है।

जरा सोचिए! मनुष्य के व्यक्तित्व को, मानवता के दृष्टिकोण से, निखारने, संवारने और सजाने का कौन सा साधन है। कौन सा रंग है? कौन सा पॉलिश है? कौन सा ब्रासो है?

मनुष्य के व्यक्तित्व को सुधारने व संवारने का एकमात्र साधन है तप। तप द्वारा ही मनुष्य के जीवन में निखार आ सकता है। तपस्वी ही वास्तव में मनुष्य कहलाने का अधिकारी हो सकता है। मानव बन सकता है।

दिवमारुहत तपसा तपस्वी - अथर्व. 13/2/25

भावार्थ :- तपस्वी तप से ऊपर उठता है। तप करने से ही मनुष्य, प्रार्थना, उपासना करके, ज्ञान प्राप्ति के पश्चात्, प्रभु चरणों में बैठने का आनन्द प्राप्त कर सकता है।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

तप का अर्थ, अभिप्राय

आजकल समाज में एक भ्रान्ति प्रचलित है कि शरीर को कष्ट देने का नाम तप है। एक टांग पर काफी समय तक खड़े रहना, लम्बे समय तक भूखा रहना, भूमि में गड्ढ़ा खोद कर अन्धेरे में बैठना, ग्रीष्म ऋतु में आग जलाकर उसके पास लम्बे समय तक बैठना, शरद ऋतु में बर्फ के ऊपर लेटना, जल में समाधि लगाना, बालों को बहुत ज्यादा बढ़ाना या उनको नुचवा लेना, एक हाथ ऊपर करके खड़ा रहना आदि-आदि ऐसे उदाहरण समाज में प्राय: देखने को मिलते हैं। ऐसा लगता है कि लोगों ने अपनी मनमानी ढंग से तप की परिभाषा दूसरों को प्रभावित करने के लिए बनाई हुई है।

वेद के अनुसार उपरोक्त कोई भी क्रिया तप की श्रेणी में नहीं आती है। शरीर को कष्ट देने का नाम तप नहीं है। इसके विपरीत वेद शरीर को स्वस्थ रखने का उपदेश देता है। इन्द्रियों को सबल और शरीर को 100 वर्ष स्वस्थ रखने पर बल देता है। अत: शरीर का ध्यान रखने से ही संसार रूपी भव सागर से उतरा जा सकता है।

वैदिक सन्ध्या व देवयज्ञ के कुछ मंत्रों द्वारा शरीर व इन्द्रियों को स्वस्थ व शक्तिशाली बनाने के लिए ईश्वर से प्रार्थनाएं की गई हैं -

ओ3म् वाक् वाक् ..... ओ3म् करतल कर पृष्ठे।
(सन्ध्या-अङ्ग-स्पर्श-मन्त्र)

ओ3म् तच्चुर्देवहितं ..... शरद: शतात्।।
(सन्ध्या-उपस्थान मन्त्र)

ओ3म् बाड्म् आस्येऽस्तु ..... में सह सन्तु।। (देवयज्ञ)

अत: सत्य और न्याय के मार्ग में हर कष्ट को झेलकर हर बाधा को हटाते हुए अग्रसर होने का नाम तप है।

शरीर, वाणी और मन का तप-यह तीन तप है।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

शरीर का पहला तप-आंख का तप

शरीर द्वारा माता-पिता, गुरुजनों, संन्यासियों, विद्वानों, असहाय, निर्धन, अबला एवं निर्बल की सेवा करना ही शरीर का तप है। इन्द्रियों को वश में रखकर उनका सद्उपयोग करना शरीर तप में आता है।

वैदिक सन्ध्या के मार्जन मन्त्र में प्रभु से नेत्रों को, कण्ठ को, हृदय को, नाभि को, पाँव को एवं बुद्धि को पवित्र करने की प्रार्थना की गई है। अत: मनुष्य को इन्द्रियों के दुरुपयोग से बचना चाहिए। उनका सदुपयोग करना चाहिए। आइये! आंख, हाथ, कान, पांव आदि इन्द्रियों के कार्य क्षेत्र का चिंतन करते हैं।

आंख - परमात्मा ने मनुष्य को आंख दी है जीवन को उन्नत बनाने के लिए, प्राकृतिक सौन्दर्य देखने के लिए, लोगों के दु:ख में संवेदना प्रकट करने के लिए, समाज का उपकार करने के लिए। अत: आंख का तप यही है कि परमात्मा की कारीगरी को देखकर उसका धन्यवाद करें। **केवल उसी की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करें-किसी अन्य देवी-देवता, महापुरुष की कदापि नहीं, उसकी सृष्टि में सहयोग दें और उसकी कृपा का पात्र बनें।**

लेकिन आज मनुष्य की चाल-ढाल, आचार-व्यवहार, पूजा-उपासना पद्धति को देखकर प्रत्येक सभ्य व्यक्ति का माथा शर्म से झुक जाता है। समाज में बढ़ती हुई अपहरण, हठ संभोग, बलात्कार, दुष्कर्म आदि की घटनाओं को देखते हुये ऐसा लगता है कि आज का मनुष्य एवं युवक राक्षस से भी गया गुजरा है। दिन-प्रतिदिन मनुष्य का आचरण नीचे गिरता जा रहा है। आज आवश्यकता है-चरित्र निर्माण की, ब्रह्मचर्य आश्रम एवं गृहस्थ आश्रम में, विशेष रूप से ब्रह्मचर्य पालन करने की।

शरीर का तप आत्मा को स्वच्छ और निर्मल करता है।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

शरीर का दूसरा तप - हाथ का तप

हाथ एक महत्त्वपूर्ण कर्मेन्द्रिय है। परमात्मा ने इसे मनुष्य को इसलिए दिया है कि आत्मा इसकी सहायता से अपनी आवश्कताएं पूरी कर सके, गरीब निर्बल व असहाय व्यक्तियों की सहायता कर सके, समाज की सामाजिक और आर्थिक उन्नति में सहयोग दे सके। एक हाथ ऊपर करके खड़ा रहना, ईश्वर द्वारा दी गई इस अमूल्य इन्द्रिय का घोर अपमान है।

आज समाज में ''हाथ'' का खुलेआम दुरुपयोग होता दिखाई दे रहा है। मनुष्य हिंसा, आतंकवाद, पाप आदि के न केवल सभी कार्य कर रहा है बल्कि हाथ की शक्ति का दुरुपयोग करके प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है। अफसोस! आजकल ऐसे घृणित कार्यों को कुछ राष्ट्र, धर्मगुरु व राजनेता भी अपनी सहमति दे रहे हैं। **ऐसे सभी व्यक्तियों को, कर्मफल व्यवस्था के नियम के अनुसार, ईश्वर निःसन्देह इस जीवन में अथवा अगले जन्म में, कठोर दंड अवश्य देता है।**

अतः यह हाथ समाज सेवा, राष्ट्र सेवा के लिए उठने चाहिए। यह हाथ किसी अबला की सहायता के लिए, किसी बेसहारा व गरीब को सहारा देने के लिए, किसी को जीवन दान देने के लिए अथवा किसी की मदद के लिए उठने चाहिए। हिंसात्मक व पाप कर्म करने के लिए कदापि नहीं।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

शरीर का तीसरा तप - कान का तप

कान का रस है-चुगली सुनने में। इस इन्द्रिय को दूसरे की निन्दा सुनना अच्छा लगता है। इसकी रुचि दूसरे की हानि में, दूसरे के विनाश में, प्रसन्नता की बन चुकी है। इसके द्वारा मनुष्य दूसरे के दु:ख में सुख को महसूस करता है। उदाहरण के लिए (1) किसी धर्म चर्चा में लोग धीरे-धीरे खिसकना शुरू कर देते हैं, लेकिन किसी फिल्मी चर्चा में जाते हुये भी रूक जाते हैं। (2) अब किसी संन्यासी या वैदिक विद्वान को देखकर भीड़ स्वयं इकट्ठा नहीं होती है लेकिन फिल्मी हीरो या हिरोइन आ जाये तो बाजार में/क्लब में/सार्वजनिक स्थान में भीड़ इकट्ठा हो जाती है। कारण, लोगों को अश्लील बातें, किस्से, राजनैतिक चर्चाएं, चुटकुले आदि सुनने में अधिक सुख का अनुभव होता है। (3) यदि कोई सरकार अच्छा कार्य करे तो कोई कान सुनने को तैयार नहीं। इसके विपरीत सरकार में घोटाले की बात हो (यद्यपि गलत हो) फिर भी लोग उसका विवरण सुनने के लिए बेचैन हो जाते हैं।

कान का तप है कि वह दूसरे की निन्दा न सुने, दूसरे के अवगुण न सुनें। सुने तो दूसरों के गुण ताकि उन गुणों को अपने अन्दर धारण कर सके। सुने तो प्रभु की चर्चा सुने, उसकी कीर्ति सुनें। महापुरुषों के उपदेश सुनें, सत्संग सुनें ताकि वह महापुरुषों के गुणों को अपने अन्दर लाकर अपना जीवन सफल बना सके।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

शरीर का चौथा तप - पाँव का तप

मनुष्य को किसी सत्संग में ले जाना जहाँ पर वेद कथा व प्रवचन हो रहा हो, किसी अस्पताल में ले जाना जहाँ पर मरीजों की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हो सके, किसी अनाथालय या वृद्ध आश्रम में ले जाना जहाँ पर उनकी सहायता की जा सके, परोपकार के कार्य में भागीदार बनाना आदि पांव के कार्य हैं। ये पांव के तप में आते हैं।

लेकिन आज समाज किस दिशा में जा रहा है। मनुष्य के अधिकतर कार्य 'पाँव के तप'' के विपरीत दिशा में हो रहे हैं। किसी के पास समय नहीं है आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में जाने का, वैदिक ज्ञान प्राप्त करने का, अनाथालयों, वृद्ध आश्रमों या अस्पताल जाने का, परोपकार के कार्य करने का।

आजकल कुछ लोग या तो भोगवाद में सुख की अनुभूति कर रहे हैं अथवा वेद-विरुद्ध क्रियायें जैसे जड़-पूजा, मूर्ति पूजा, ग्रह या नक्षत्र पूजा, फलित ज्योतिष आदि में अपना सुख ढूंढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। इतना ही नहीं, समाज का एक शिक्षित व धनी वर्ग की तो मुख्य रूचि शराब की दुकान पर जाना, होटलों व क्लबों में जाकर शराब पीना, अण्डा-मांस खाना, नाच-गाना करना, जुआ खेलना आदि ही बनती जा रही है। वे इसी में गर्व महसूस कर रहे हैं।

उपरोक्त सभी क्रियायें वेद के उपदेशों का घोर उल्लंघन है, दण्डनीय है।

आइये! संकल्प लें। प्रभु हमारी पाँव के तप की गरिमा को बनाये रखने में सहायता करे। हम पाप कर्म से बचें ताकि आने वाली पीढ़ी को हम पर गर्व हो।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

वाणी का पहला तप - सत्य बोलना

हे मनुष्यो! तुम लोग सत्य धर्म से अनुपम सुख प्राप्त करो। ऋ॰ 5/51/2

तप का दूसरा भाग है-वाणी का तप। इसके चार भाग हैं।

वाणी का पहला तप है कि मनुष्य सदा सत्य बोले। सत्य बोलने से निडरता आती है, आत्मविश्वास जागता है, पवित्रता और स्वच्छता आती है। जिस प्रकार आत्मा के बगैर शरीर एक लाश बन जाता है वैसे ही सत्य के बगैर जीवन व्यर्थ है, आधारहीन है।

ऋषि दयानन्द सत्य के अनुयायी थे। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में बड़े सुन्दर शब्दों में सत्य विद्या और सत्य की परिभाषा लिखी है जोकि पढ़ने योग्य है, चिंतन करने और आचरण में लाने योग्य है। उनके अनुसार जो चीज जैसी है वैसा मानना सत्य है। जड़ को चेतन मानना झूठ है। नित्य को नित्य और अनित्य को अनित्य जानना सत्य है और इसके विपरीत झूठ है। उदाहरण मनुष्य शरीर को नित्य मानता है तो दु:खी होता है।

समाज को सत्य के मार्ग पर प्रेरित करने के लिए स्वामी दयानन्द महाराज ने आर्यसमाज की स्थापना करते हुए नियम 4 और 5 में सत्य के महत्व को दर्शाया है।

नियम 4 : सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

नियम 5 : सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

अत: सत्य बोलने, सत्य के अनुरूप सोचने और कर्म करने से ही मनुष्य सत्यस्वरूप परमात्मा की अनुभूति कर सकता है। दूसरे शब्दों में, असत्य का त्याग करना जीवन में आनन्द और विकास के बीज बोने के समान है।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

वाणी का दूसरा तप-मीठा बोलना

वाणी की मधुरता से सभी लोग शीघ्र ही मित्र बन जाते हैं और कठोर वाणी से दुश्मन बनाने में देर नहीं लगती है। इसलिए मधुर वाणी का सामाजिक व आध्यात्मिक जीवन में बहुत महत्व है। सन्त कबीर ने भी कहा है -

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोये।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।।

कटु बोलना, असंगत बात कहना, अहंकार युक्त शब्द बोलना आदि वाणी के ऐसे दोष हैं जिनसे मनुष्य पग-पग पर संकट और परेशानी का सामना करता है। याद रखिये! तलवार का घाव देर सवेर भर सकता है लेकिन कड़वी वाणी से हुआ घाव कभी नहीं भरता है।

वाणी के दुरुपयोग से पति-पत्नी में तलाक, परिवार में कलह, दोस्तों में अलगाव, रिश्तेदारों में खटास और दो देशों में युद्ध भी होते हुए देखे गये हैं। शायद महाभारत का युद्ध होता ही न, यदि द्रौपदी ने यह शब्द न कहे होते कि ''**अन्धे की औलाद अन्धी ही होती है।**''

मधुर वाणी से परिवार में उच्च रक्तचाप और मधुमेह जैसी बिमारियों को नियंत्रण करने में सहायता मिलती है बच्चों पर अच्छे संस्कार पड़ते हैं परिवार में सुख और एकता आती है। समाज में भी परस्पर प्रेम की भावना बढ़ती है। लेकिन मधुर वाणी के साथ कर्मों का श्रेष्ठ व सत्य होना भी अपेक्षित है।

अत: मनुष्य को हमेशा मीठा व उचित बोलना चाहिए। अपने सामाजिक व पारिवारिक जीवन को उत्तम बनाना चाहिये। प्रारम्भ में इस नियम का पालन करने में कुछ परेशानियाँ आ सकती हैं लेकिन अभ्यास से व्यक्ति मृदुभाषी बनने में नि:सन्देह सफलता प्राप्त कर सकता है।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

वाणी का तीसरा तप-नाप तोल कर बोलना

किसी भी विषय पर जरूरत से ज्यादा और निरन्तर बोलते रहना और दूसरों को अपने विचार रखने का अवसर न देना ही ज्यादा बोलने की आदत होती है।

सोच समझकर न बोलने वाला, ज्यादा बोलने वाला, उचित विचार किये बिना बोलने वाला, झूठ बोलने वाला और गलत बात बोलने वाला अक्सर लज्जा का पात्र होता है। इसलिए मनुष्य को सोच-समझकर उतना ही बोलना चाहिए जितना आवश्यक है।

ईश्वर ने भी मनुष्य की शरीर रचना करते समय उसे दो कान दिये जबकि जीभ एक ही दी। यह इस बात का संकेत करता है कि मनुष्य को सुनना अधिक चाहिए। जितना आवश्यक हो उतना ही बोलना चाहिए। मर्यादा के साथ बोलना चाहिए। **बुद्धिमान के लिए यह श्रेष्ठ और आवश्यक गुण है।**

किसी की चुगली करना मर्यादा के अनुकूल नहीं। इसलिए अश्लील नहीं बोलना चाहिए, बड़ों को आदर के साथ बुलाना चाहिए और छोटों के साथ स्नेह से बात करना ही मर्यादा है।

कम बोलने की कला का रहस्य

1. अब सुनना है। यह आदत बनाने की कोशिश करें।
2. ज्यादा बोलने के बजाय चुप रहने का अभ्यास करें।
3. बहस करने से खुद को रोकने का प्रयत्न करें।
4. यदि विषय का ठीक-ठीक ज्ञान न हो तो कम बोलना ही उचित है।
5. शब्दों को सोच-समझकर और चुनकर प्रयोग करें।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

वाणी का चौथा तप-सुमार्ग दर्शन एवं आचरण

मनुष्य जिस विषय पर दूसरों से वार्तालाप करता है, उपदेश देता है, उसका आचरण भी वैसा ही होना चाहिए। यदि ऐसा है तो उसकी वाणी का प्रभाव सकारात्मक होगा। सुनने वाला मनुष्य वक्ता का सम्मान करेगा। उसके द्वारा दी गई शिक्षा को अपने जीवन में पालन करने का प्रयत्न करेगा। उदाहरण के लिए यदि कोई विद्वान ईमानदारी और सेवा का उपदेश देता है तो वह भी ईमानदार होना चाहिए। उसके अन्दर न केवल सेवा भाव हो बल्कि वह स्वयं भी सेवा करता हो।

समाज में आजकल कुछ विद्वान्, राजनेता उपरोक्त नियम का पालन करते नहीं दिखते हैं। उनकी कथनी और करनी में अन्तर नजर आता है। फलस्वरूप समाज व राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक व आध्यात्मिक उन्नति ठीक दिशा में जाती हुई प्रतीत नहीं हो रही है। अत: प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि किसी भी विद्वान्, नेता, राजनेता, धार्मिक संस्था, राजनैतिक पार्टी का अनुकरण करने से पहले, समाज और राष्ट्र हित में, उसके आचरण का चिंतन अवश्य करें। ऐसी पार्टी या संस्था को सहयोग न दें जिसकी नीतियाँ राष्ट्र हित में नहीं हैं, जिसके अध्यक्ष या मुखिया का आचरण वेदानुकूल नहीं है।

कुछ माता-पिता और अभिभावकों का आचरण भी प्रंशसनीय नहीं है। उनकी कथनी-करनी में अंतर है। इसीलिए उनके बच्चे धीरे-धीरे उनका सम्मान कम करते जा रहे हैं। माता-पिता को इस दिशा में सकारात्मक कदम उठाने चाहिएं।

प्रत्येक मनुष्य द्वारा वाणी का प्रयोग करते समय, उपरोक्त नियम का पालन करना परिवार, समाज व राष्ट्र हित में है।

मन का तप

आध्यात्मिक सफलता प्राप्त करने के लिए, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त करने के लिए 'तीन प्रकार के अनुष्ठान' (तप की दृष्टि से) करने का विधान है। (1) शरीर का तप, (2) वाणी का तप एवं (3) मन का तप। शरीर व वाणी के तप की व्याख्या पहले की जा चुकी है।

मन का तप - शरीर व वाणी के तप का आधार है। मन के तप के बिना शरीर व वाणी के तप में सफलता मिलना असंभव है।

इन्द्रियों में जो भी ज्योति है, शक्ति इच्छा है- वह सब मन के कारण है। सब इन्द्रियाँ मन के आधीन हैं। **पाँव** तब तक किसी उचित अथवा अनुचित स्थान पर नहीं जा सकता जब तक मन आदेश न दे। **हाथ** कोई सुकर्म या कुकर्म नहीं कर सकता जब तक मन इशारा नहीं करता। **आँख** खुली है मन किसी ओर तरफ है। ऐसी दशा में मनुष्य को ज्ञात ही नहीं होता कि क्या देखा। कारण आँख की ज्योति को मन का सहयोग नहीं था। **कान** की सुनने की शक्ति है, कार्य भी कर रही है, पर ध्यान/मन किसी ओर तरफ है। कुछ सुनाई नहीं देगा क्योंकि मन का साथ नहीं था। सन्ध्या के मंत्र याद हैं, ''सन्ध्या कर भी रहे हैं, बुद्धि भी तीव्र है पर ध्यान/मन किसी और तरफ है। इसलिए कई बार मन्त्र भूल जाता है। **यह सब मन का कमाल है।** निम्न मंत्र में मन को ज्योतियों की ज्योति बताया है-

यज्जाग्रतो दूरमुदैति देवं तदु तथैवति।।

दुरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (यजु.)

भावार्थः- जो दिव्य गुणों से युक्त जागते हुए व्यक्ति का मन अधिक दूर जाता है वैसे ही सोते हुए व्यक्ति का भी उसी प्रकार जाता है। दूर जाने वाला, विषयों के प्रकाशक, चक्षुरादि इन्द्रियों का जो प्रकाशक है, वह मेरा मन अच्छे प्रकार का हो।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

मन का तप - 1 मन की एकाग्रता के लिए ''प्राणायाम''

मन के तप को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। (1) मन की एकाग्रता, (2) निर्मल बुद्धि एवं (3) आनन्द प्राप्ति की इच्छा। जब तक मनुष्य इन तीनों का अनुष्ठान नहीं कर लेता, इनका स्वामी नहीं बन जाता, तब तक ''मन के तप'' की सिद्धि नहीं होगी।

मन को एकाग्र करने का एक उपाय है प्राणायाम। प्राणायाम के अभ्यास से सब इन्द्रियाँ मन के स्वामित्व में आ जाती हैं। अब प्राणायाम की जानकारी प्रस्तुत है :-

योग का चौथा अंग-प्राणायाम

किसी भी सुविधाजनक आसन में बैठकर मन की चंचलता को रोकने के लिए श्वास-प्रश्वास की जो क्रिया की जाती है उसे प्राणायाम कहते हैं। यह एक महत्वपूर्ण क्रिया है। इसका प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। इसके साथ-साथ हमारी इन्द्रियां, मन और चित्त की मलिनता और अशुद्धि भी दूर हो जाती है, अतः शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए सभी को प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

आध्यात्मिक उन्नति, ध्यान में सफलता व ईश्वर की अनुभूति श्वसन क्रियाओं और प्राणायाम के अभ्यास के बिना असंभव है।

प्राणायाम

योगदर्शन में केवल चार प्राणायामों का वर्णन है। यह बहुत आसान हैं। इनके करने की ठीक विधि किसी योगाचार्य से भी सीखी जा सकती है। इनका विवरण सूक्ष्म में इस प्रकार है।

(1) **बाह्य प्राणायाम :-** इसे बाहरी कुम्भक या प्रथम प्राणायाम भी कहते हैं। इसमें प्राण वायु को धीरे-धीरे फेफड़ों से बाहर निकाला जाता है। पूर्ण प्राण वायु बाहर निकलने पर उसे यथा शक्ति बाहर ही रोकना चाहिए। जब प्राण वायु बाहर न रूक सके तो उसे धीरे-धीरे भीतर लें। फिर पुनः यही क्रिया करें। इस प्रकार इसे 3 से 21 बार कर सकते हैं। यह क्रिया जप व ध्यान में बहुत सहायक होती है।

(2) **आभ्यन्तर प्राणायाम :-**इसे आंतरिक कुम्भक या दूसरा प्राणायाम भी कहते हैं। इसमें श्वास को धीरे-धीरे अन्दर भरते हैं। श्वास को अन्दर भरकर यथाशक्ति रोकना चाहिए। जब श्वास अन्दर न रूक सके तब धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालना चाहिए। फिर पुनः यही क्रिया करें।

नोट - एक समय में केवल एक ही प्राणायाम करें-या तो बाह्य प्राणायाम करें या आभ्यान्तर प्राणायाम। एक प्रकार के प्राणायाम के अभ्यास के समाप्त होने पर दूसरा शुरू कर सकते हैं।

(3) **स्तम्भवृत्ति प्राणायाम :-** बाह्य या आभ्यान्तर कुम्भक न करके प्राणवायु को अचानक ही जहाँ का तहाँ यथाशक्ति रोका जाता है। प्राणवायु न रूकने पर सूक्ष्म श्वास की क्रिया की जाती है। उसके बाद पुनः स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की स्थिति बनाई जाती है। यह क्रिया ध्यान में बहुत सहायक होती है।

प्राणायाम एवं तीन प्रकार की क्रियायें

(4) **बाह्य आभ्यान्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम :-** यह क्रिया बाह्य और आभ्यान्तर प्राणायाम को मिलाकर की जाती है। बाह्य कुम्भक के समय जब श्वास अन्दर आने लगे तो उसे धक्का देकर यथाशक्ति बाहर ही रोकना चाहिए। इसी प्रकार आभ्यान्तर कुम्भक में जब श्वास भीतर से बाहर निकालना चाहे तो उसे यथाशक्ति बाहर न निकलने देना और बाहर से और श्वास अन्दर लेना चाहिए। दोनों स्थितियों में श्वास को रोकने के बाद धीरे-धीरे छोड़ना चाहिये। इसके अभ्यास से मन व इन्द्रियां संयम में होने लगती हैं।

प्राणायाम का अभ्यास शुरू करने से पहले प्रतिदिन सुबह दोनों नासिकाओं को साफ करना चाहिए। स्नान करने से पहले अंगुली से दोनों नासिकाओं में सरसों का तेल लगाना चाहिए। तत्पश्चात् प्रत्येक नासिका से धीरे-धीरे श्वास अन्दर लें ताकि कुछ तेल का अंश नासिका के द्वारा अन्दर चला जाये। इस प्रकार प्रतिदिन करने से नासिका में जमा मल मुलायम होकर धीरे-धीरे बाहर निकलता रहता है और नासिका साफ व मुलायम रहती है। सप्ताह में एक या दो बार दोनों नासिकाओं में बादाम रोगन की तीन-तीन बूंदें रात को सोते समय डालने से नासिकायें मुलायम रहती हैं व सिर दर्द नहीं होता।

प्राणायाम करने से पहले नाड़ी शुद्धि क्रिया (अनुलोम विलोम क्रिया) करनी चाहिए ताकि हमारे मेरुदण्ड के अन्दर की तीन आध्यात्मिक नाड़ियां-इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना सदा सक्रिय रहें। कपालभाति, भस्त्रिका, अनुलोम-विलोम नाड़ी शोधन आदि प्राणायाम हठ योग के अंतर्गत आते हैं। ये शारीरिक स्वास्थ्य के लिए ठीक विधि से करने पर लाभदायक होती है। इनका वर्णन यहाँ पर नहीं किया जा रहा है।

प्राणायाम में प्रयोग होने वाली क्रियाओं के नाम- (क) पूरक : प्राणायाम में श्वास के अन्दर लेने की क्रिया को पूरक कहते हैं। **(ख) रेचक :** श्वास को भीतर से बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं।

श्वसन क्रियायें

(ग) कुम्भक :- श्वास को अन्दर या बाहर रोकने की क्रिया को कुम्भक कहते हैं। शरीर और मन को स्थिर करने से ही कुम्भक का अभ्यास ठीक होता है।

जप व ध्यान में सफलता प्राप्त करने के लिए उपरोक्त तीनों प्रकार की क्रियाओं का अभ्यास पर्याप्त समय तक करना चाहिए। यह क्रियायें जप व ध्यान में बहुत सहायक होती हैं।

श्वसन क्रियायें - श्वसन अर्थात् ''श्वास लेना'' की तीन महत्वपूर्ण क्रियायें या अवस्थायें हैं-**दीर्घ, मध्यम और सूक्ष्म।**

(क) दीर्घ श्वसन : श्वास को धीरे-धीरे लम्बा व गहरा लेना और इसी प्रकार धीरे-धीरे छोड़ना, दीर्घ श्वसन कहलाता है। दीर्घ श्वसन (पूरक विधि) में श्वास को मन्द गति से लम्बा व गहरा अन्दर ले जाना होता है। दीर्घ श्वसन (रेचक विधि) में श्वास को धीरे-धीरे मन्द गति से बाहर निकालना होता है। **(ख) मध्य श्वसन :** इसमें श्वास मध्यम गति से लिया जाता है अर्थात् बहुत धीमा नहीं-बहुत गहरा नहीं। **(ग) सूक्ष्म श्वसन :** इसमें श्वास की गति धीमी तो होती है लेकिन गहरी नहीं होती।

उपरोक्त श्वसन क्रियायें प्राण वायु को शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाने में सहायक होती हैं। इनमें मुख्य दीर्घ श्वसन क्रिया है। इन क्रियाओं के करने से शरीर स्वस्थ रहता है, शरीर के अनेक विकार दूर होते हैं, मानसिक एकाग्रता बढ़ती है, मन शान्त व संयम में हो जाता है। श्वसन क्रियाओं और प्राणायाम के अभ्यास से मन जप व ध्यान में लग जाता है। सफलता मिलती है।

इसके अतिरिक्त दीर्घ श्वसन के अभ्यास से स्मृति शक्ति तथा मन की एकाग्रता बढ़ती है, ज्ञान की वृद्धि होती है। नाड़ी तन्त्र सुव्यवस्थित होता है, फेफड़े शक्तिशाली होते हैं, इन्द्रियों पर संयम होता है, ब्रह्मचर्य पालन में सहायता मिलती है और स्वास्थ्य अच्छा होता है।

प्राणायाम करते समय सावधानियाँ-1

श्वसन क्रियायें हानिरहित हैं। इन्हें कोई भी व्यक्ति कुछ ही दिनों के अभ्यास से सीख सकता है। अपने शरीर को स्वस्थ रखने के साथ-साथ आध्यात्मिक लाभ भी उठा सकता है।

नोट : बूढ़े व निर्बल/कमजोर व्यक्ति बहुत अधिक गहरा श्वास न लें। इसके अतिरिक्त शीत ऋतु में भी सभी को खुले वातावरण में अधिक गहरा श्वास नहीं लेना चाहिए। इससे ठण्ड लगने की संभावना हो सकती है।

प्राणायाम व श्वसन क्रियायें करते समय सावधानियाँ -

1. प्राणायाम और श्वसन क्रियाओं के करने का ठीक समय प्रात:काल है। 2. ये खाली पेट होने पर या खाने के 4 या 5 घंटे बाद ही करें। 3. यदि भोजन न पचा हो या मल त्याग न हुआ हो तो प्राणायाम/श्वसन क्रियायें न करना अच्छा है। 4. प्राणायाम व श्वसन क्रियायें शुद्ध व खुले स्थान जहाँ पर शुद्ध वायु हो, वहीं पर बैठकर करना चाहिए। बहुत सर्दी के मौसम में खुले स्थान पर बैठने से बचें। 5. प्राणायाम व श्वसन क्रियाओं की मात्रा मौसम / ऋतु के अनुसार अपनी सामर्थ्य, आयु व स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर तय करनी चाहिए। अधिक सर्दी में बहुत गहरा लम्बा श्वास न लें। ठंड लग सकती है। हृदय रोग व उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति प्राणायाम व श्वसन क्रियाओं की मात्रा निश्चित करते समय अपने डाक्टर से सलाह ले लें।

प्राणायाम करते समय सावधानियाँ-2

6. प्राणायाम, श्वसन क्रियाओं की मात्रा, संख्या पर ध्यान न देकर, उसकी विधि और कुशलता पर ध्यान देना चाहिए। 7. प्राणायाम, श्वसन क्रियाओं को करने वाले का भोजन शाकाहारी व सात्विक होना चाहिए ताकि पूर्ण लाभ मिल सके। 8. प्राणायाम, श्वसन क्रियायें करते समय यदि सिर भारी हो जाये, सिर दर्द होने लगे या चक्कर आने लगे या कोई अन्य शारीरिक परेशानी हो तो ये क्रियायें न करें और किसी निपुण योगाचार्य की सलाह लें। 9. प्राणायाम व श्वसन क्रियाओं की संख्या शीत ऋतु में अधिक हो सकती है। ग्रीष्म ऋतु में कम होनी चाहिए। वर्षा ऋतु में न अधिक न कम। 10. प्राणायाम, विशेष रूप से हठ योग के अंतर्गत आने वाले प्राणायाम, अच्छे शिक्षक से सीख कर ही शुरू करना चाहिए, नहीं तो हानि भी हो सकती है। 11. प्राणायाम व श्वास प्रश्वास क्रिया द्वारा ओ३म् का जाप व ध्यान करने से मन की चंचलता को रोकने में सहायता मिलती है। आत्मा के ऊपर जो अज्ञान का आवरण है वह धीरे-धीरे नष्ट होता जाता है।

ओ३म् का जप एवं गायत्री मन्त्र के जप में भस्त्रिका प्राणायाम का प्रयोग अधिक और कुम्भक का प्रयोग सूक्ष्म रूप में होता है।

ध्यान में कुम्भक एवं स्तम्भवृत्ति प्राणायाम का प्रयोग अधिक समय तक किया जाता है। भस्त्रिका प्राणायाम को सूक्ष्म (कम समय के लिए) किया जाता है।

मन का तप (दूसरा भाग) - निर्मल अर्थात् पवित्र बुद्धि

मन का दूसरा सोपान है-निर्मल बुद्धि। मन एक राजा है। बुद्धि उसकी मन्त्री है। मन्त्री का धर्म है परामर्श देना। राजा को जैसी सलाह मिलेगी, वह वैसा की कार्य-अच्छा या बुरा-करेगा। इस प्रकार मन, बुद्धि की सलाह लेकर ही इन्द्रियों को कार्य करने का आदेश देता है। बुद्धि यदि पवित्र होगी तो सुमार्ग पर चलने का परामर्श देगी। अगर भ्रष्ट होगी तो कुमार्ग पर प्रेरित करेगी। (आजकल कुछ राष्ट्रों की बुद्धि कुमार्ग पर जाती प्रतीत होती है) इसीलिए प्रत्येक राष्ट्र में राजनेताओं, शासकों, धर्मगुरुओं, अन्य मनुष्यों की बुद्धि का निर्मल होना, पवित्र होना, शुद्ध होना जरूरी है, अन्यथा शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति सही दिशा में होना असंभव है। संसार में शान्ति स्थापित करना कठिन है। इस विषय पर गहन चिंतन करना प्रत्येक मनुष्य का मौलिक कर्तव्य है।

सन्ध्या में हम प्रार्थना करते हैं - **ओ३म् भू पुनाति शिरसि।**

भावार्थ: प्रभु! आप भू हैं। सब संसार को पैदा करने वाले हैं। मेरी बुद्धि को पवित्र कर दीजिए।

वह परमात्मा कितना बुद्धिमान होगा जिससे न केवल सूर्य, चन्द्र, तारे, अंतरिक्ष आदि बनायें बल्कि आज तक उनको बिना त्रुटि के सुचारू रूप से चला रहा है। इसीलिए सर्वशक्तिमान परमेश्वर से बुद्धि को पवित्र करने की प्रार्थना उपरोक्त मंत्र में, गायत्री मन्त्र में व अन्य वैदिक मंत्रों में भी की गई है। इतना ही नहीं वेद ने सुमति प्राप्त करने के लिए मनुष्य का मार्गदर्शन भी किया है।

ओ३म् यां मेधा देवगणाः पितर श्चोपासते।
तया मामद्य मेध्यागने मेधाविनं कुरू स्वाहा।।

यह मंत्र मार्गदर्शन करता है कि मनुष्य को अपने पूर्वजों और महान पुरुषों के जीवन-चरित्र से प्रेरणा लेकर सुमार्ग पर चलना चाहिए।

मन का तप (तीसरा भाग) आनन्द अभिलाषी होना

सुख इन्द्रियों का विषय है और आनन्द आत्मा का। साधारण मनुष्य सुख की कामना करता है, उसे ही पाकर संतुष्ट रहता है। ईश्वर भक्त/तपस्वी सदैव आनन्द की इच्छा करता है उसे पाने के लिए सदैव ही तत्पर रहता है, उसे भौतिक सुख में अशान्ति का अनुभव होता है। डॉक्टरी की विद्या पढ़ने के लिए साइंस और इंजीनियर बनने के लिए गणित, विज्ञान की पढ़ाई आवश्यक है। उसी प्रकार आनन्द की प्राप्ति के लिए मनुष्य को निम्न तीन योग्यताएं अपने अन्दर पैदा करनी होती हैं।

(1) **आत्म विश्वास :** बिना आत्म विश्वास के मनुष्य को किसी भी क्षेत्र में पूर्ण सफलता मिलना असंभव है। आत्म विश्वासी व्यक्ति बड़े से बड़े काम को निडरता से पूरा कर लेता है। जो निर्णय लेता है उस पर पूरा उतरता है, सफलता सदा उसके पांव छूती है। इस विषय पर हम आदरणीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के ''जीवन'' का चिंतन कर सकते हैं।

जिस व्यक्ति में आत्म विश्वास नहीं होता, वह छोटी सी विपत्ति आने पर भी घबरा जाता है। उसमें निर्णय शक्ति का अभाव होता है। कर्मशील नहीं होता है। केवल दूसरों के दोष देखता है।

(2) **आशावादी होना :** आशावादी व्यक्ति कर्म में विश्वास रखता है। सकारात्मक सोच का स्वामी होता है। निराशावादी व्यक्ति की सोच सदैव नकारात्मक होती है। परिश्रमी नहीं होता है।

(3) **ईश्वर की सत्ता पर अटूट विश्वास :** ईश्वर की सत्ता पर विश्वास रखने वाले व्यक्ति की सोच रचनात्मक होती है। वह सबका भला चाहता है। किसी को दु:ख नहीं देता है। विनोद प्रिय व हंसमुख होता है। असफलता में घबराता नहीं है।

अत: मन के तप के अनुष्ठान के लिए मन की एकाग्रता, निर्मलता और आनन्द की अभिलाषा-तीनों पर विजय पाना जरूरी है।

साभार-पुस्तक - निखार, लेखक - डॉ. आनन्द अभिलाषी,
पूर्व प्रधान : वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर-हरिद्वार

उपासना-सन्ध्या में सफलता

प्रभु भक्तो! उपासना या सन्ध्या में अधिकांश साधकों को पूर्ण सन्तुष्टि नहीं मिलती है। इसके अनेक कारण हैं जैसे-जीवन का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति न समझना, उपासना से होने वाले लाभों को न जानना, उपासना/सन्ध्या से पूर्व मानसिक और शारीरिक तैयारी न करना, उपासना की ठीक विधि का ज्ञान न होना, प्राणायाम की ठीक विधि न जानना, सात्विक आहार न करना, जीवन में यम-नियमों का पूर्ण रूप से पालन न करना, पञ्च महायज्ञ का अनुष्ठान न करना, ईश्वर, जीवात्मा व सृष्टि के यथार्थ स्वरूप को न जानना, जप क्रिया को प्राणायाम व भावार्थ के साथ न करना आदि।

ईश्वर उपासना में मन न लगने के मुख्य कारण :-

1. मन और इन्द्रियों के विषय में पूर्ण व सही ज्ञान न होना, 2. ईश्वर, प्रकृति व आत्मा के विषय में ठीक व पर्याप्त ज्ञान न होना, 3. विषय भोगों से होने वाले सुख-दु:ख का सही ज्ञान न होना, 4. उपासना से होने वाले लाभों को न जानना, 5. उपासना की सही विधि व तैयारी का ठीक ज्ञान न होना, 6. वैदिक ज्ञान में पूर्ण श्रद्धा न होना अथवा उसके अनुसार आचरण न करना, 7. जप एवं सन्ध्या को प्राणायाम की क्रियाओं के साथ न करना या निरन्तर अभ्यास न करना, 8. मन्त्रों के सरल अर्थ का ज्ञान न होना, 9. व्यवहारकाल में ईश्वर प्रणिधान व शुभ आचरण का पालन न करना। सभी प्राणियों के मानव अधिकारों का सम्मान न करना, 10. यम नियम का पालन न करना व इन्द्रियों पर नियंत्रण न रखना, 11. आर्ष एवं वैदिक ग्रन्थों का निरन्तर व नित्य स्वाध्याय न करना, 12. स्वाद व विवाद में रुचि लेना।

यदि उपरोक्त कारणों को दूर कर दिया जाये तो निश्चित ही उपासना/सन्ध्या में सफलता मिलती है और उपासक को प्रभु से विशेष ज्ञान, बल, आनन्द, निर्भयता, दया आदि गुणों की प्राप्ति होती है।

ईश्वर-जीव-प्रकृति का सूक्ष्म में स्वरूप-1

ईश्वर-गुण, कर्म, स्वभाव

1. सत् है-ईश्वर की सत्ता है, उसका अस्तित्व है। **2. चित्त है** - ईश्वर चेतन है, उसका सम्पूर्ण ज्ञान स्वाभाविक और पूर्ण है। **3. आनन्द स्वरूप है** - ईश्वरीय आनन्द पूर्ण तृप्ति देता है, शुद्ध है, दु:ख रहित है। **4. सर्वव्यापक है**- कभी भी शरीर धारण नहीं करता है, स्थूल और सूक्ष्म-सभी पदार्थों में विद्यमान है। जीवात्मा में भी व्यापक है। **5. सर्वज्ञ है**-सब कुछ जानता है। सबसे बड़ा ज्ञानी है। **6. सर्वशक्तिमान है**-अपने कार्यों को अपनी सामर्थ्य से पूर्ण कर लेता है, अर्थात् संसार की उत्पत्ति करने, पालन करने, वेदों का ज्ञान देने, प्रलय करने, सभी जीवों को उनके कर्मों का फल देने में किसी की सहायता नहीं लेता है। **7. सर्वाधार है** - सबको धारण करने वाला है। हमारा और पृथ्वी, सूर्य आदि सब पदार्थों का आधार है। **8. सर्वेश्वर है**-सबका स्वामी है अर्थात् प्रकृति, सृष्टि, जीव तथा सब सत्य विद्याओं और शक्तियों का स्वामी है। **9. सर्वरक्षक है**-पूर्ण सृष्टि की रक्षा करता है। **10. सर्वान्तर्यामी है**-सबके अन्दर विद्यमान रहकर सबका नियन्त्रण करता है। **11. सृष्टिकर्ता है**-इस सृष्टि की रचना करता है। **12. अजन्मा है** - ईश्वर का जीव के समान जन्म नहीं होता, वह सदा से है और सदा रहेगा। **13. अनादि है**-उसकी उत्पत्ति नहीं होती है। **14. अनन्त है** - उसकी कोई सीमा नहीं है। वह ब्रह्माण्ड से भी बड़ा है, **15. अनुपम है** - उसके समान व उससे उत्तम कोई पदार्थ नहीं है। **16. अमर है**-कभी भी मरता नहीं है।

ईश्वर-जीव-प्रकृति का सूक्ष्म में स्वरूप-2

ईश्वर-गुण, कर्म, स्वभाव

17. अजर है-कभी बूढ़ा नहीं होता अर्थात् उसकी शक्ति कभी कम नहीं होती है। **18. अभय है** - कभी भी किसी से नहीं डरता है। **19. न्यायकारी है**-सदा न्याय ही करता है, अन्याय नहीं। जीव को अच्छे बुरे कर्मों का फल सुख और दु:ख के रूप में देता है। **20. निराकार है :** इसका कोई आकार नहीं है। कोई आकृति, रूपरंग या मूर्ति नहीं है। **21. निर्विकार है**-विकारों (परिवर्तन) से रहित है, कभी भी सुखी या दु:खी नहीं होता है। **22. नित्य है** -सदा रहता है, न उसकी उत्पत्ति होती है न विनाश। **23. दयालु है** - उसने हमें सुख के सब साधन प्रदान किये हैं और वह हमको दु:खों से बचाना चाहता है। **24. पवित्र है** - सदा शुद्ध ही रहता है, कभी अपवित्र नहीं होता है। अविद्या आदि पांच क्लेशों और शुभाशुभ कर्मों से रहित है। **25. ओ३म्**- यह ईश्वर का निज और सर्वप्रिय नाम है। उसी की उपासना करने योग्य है।

नोट :- (1) सत्, चित्, निराकार, अजन्मा, अनादि, अजर, अमर, नित्य, पवित्र-यह गुण जीवात्मा में स्वयं सिद्ध हैं। (2) आनन्द, न्याय, दया, निर्विकारता, अभय-यह गुण जीवात्मा प्रयत्न करके प्राप्त कर सकता है, बढ़ा सकता है। (3) सर्वशक्तिमत्ता, अनन्तता, सर्वाधार, सर्वेश्वर, अनुपमता, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सृष्टिकर्ता-यह गुण जीवात्मा कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता है।

(4) उपरोक्त गुणों का चिंतन दर्शाता है कि सृष्टि में जन्म लेने वाले सभी महापुरुष/योग पुरुष/ऋषि मुनि सम्माननीय व अनुकरणीय हैं। लेकिन क्या वे ईश्वर के स्थान पर अथवा ईश्वर के समान पूजनीय हो सकते हैं, इसका निर्णय आप स्वयं ले सकते हैं।

जीव-आत्मा

1. **चेतन है** - इच्छा, प्रयत्न, अल्पज्ञान, द्वेष और सुख-दुख गुणों वाला है। यह गुण, शरीर आदि जड़ पदार्थों में नहीं होते हैं।
2. **ईश्वर से भिन्न है**-सृष्टि में विद्यमान पदार्थों का भोक्ता है।
3. **शरीर से भिन्न है**-जल, वायु, भोजन या शरीर के छिद्रों द्वारा पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है। वीर्य सिंचन के समय माता के गर्भाशय में स्थापित होता है।
4. **कर्म - करने में स्वतंत्र है।**
5. **इन्द्रियाँ व मन** - का स्वामी है। इन्द्रियाँ तभी तक शरीर में कार्य करती हैं जब तक आत्मा शरीर में रहता है। इन्द्रियों के विकार से आत्मा विकारी नहीं होती।
6. **कर्मफल** - भोगने में परतन्त्र है। कर्मफल व्यवस्था ईश्वर के अधीन है। जीवन में प्राप्त होने वाले सभी सुख-दु:ख आत्मा के कर्मों के फल नहीं हैं।
7. **सत् है, नित्य है** - सदा रहने वाली है, इसका नाश नहीं होता है।
8. **एकदेशी है** - जिस शरीर के साथ संयोग होता है, उसी में अपने कर्म करती है।
9. **सूक्ष्म है** - जीवात्मा बाल से भी अधिक सूक्ष्म है।
10. **विभिन्न आत्माओं** - के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है, अन्तर शरीर, बुद्धि, ज्ञान, बल, कर्मों आदि के कारण है।
11. **आत्मा**- का बल विद्या/ज्ञान है। जैसे-जैसे विद्या बढ़ती जाती है, आत्मा बलवान होती जाती है। इसके विपरीत ज्ञान कम होने पर आत्मा कमजोर होती जाती है।
12. **पवित्र है** - बिना आत्मा के शरीर अपवित्र है। हृदय में अणु रूप में स्थित है। इसका प्रभाव सारे शरीर में रहता है।

प्रकृति-सृष्टि

1. सत्व, रज और तम-इन तीन प्रकार की सूक्ष्मतम् परमाणुओं की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है।
2. ईश्वर ने इन परमाणुओं में गति उत्पन्न करके सृष्टि की रचना निम्न प्रकार की है।

(i) सर्वप्रथम महतत्त्व-बुद्धि की रचना की।
(ii) महत्तत्व से अहंकार नामक पदार्थ की उत्पत्ति की।
(iii) अहंकार से 16 पदार्थ बनाये - 5 ज्ञानेन्द्रियां, 5 कर्मेन्द्रियां, 1 मन, 5 तन्मात्राएं (सूक्ष्मभूत)
(iv) 5 तन्मात्राओं से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि 5 स्थूलभूतों की रचना की।
(v) इन पांच स्थूलभूतों से वृक्ष, वनस्पतियां, पशु, पक्षी, कीट, मनुष्य, सूर्य, चन्द्र आदि की उत्पत्ति की।

ईश्वर-जीव-प्रकृति के उपरोक्त स्वरूप का चिन्तन मनन करने पर ही ईश्वर उपासना में सफलता मिलती है।

ईश्वर की उपासना क्यों करें?

1. ईश्वर के उपकारों का धन्यवाद देने के लिये।
2. आत्म-शुद्धि एवं मन इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने के लिये।
3. बुरे संस्कार नष्ट करने के लिये।
4. ईश्वर प्रेरणा द्वारा अच्छे संस्कार उत्पन्न करने के लिये।
5. शुभ व निष्काम कर्म करने की प्रेरणा लेने के लिये।
6. शुभ आचरण का पालन करने के लिये।
7. प्राप्त करने के योग्य ईश्वरीय गुणों की प्राप्ति के लिये।
8. ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति के लिये।
9. जीवन में संतोष की प्राप्ति के लिये।
10. सभी प्राणियों से प्रेम की भावना बनाये रखने के लिये।

उपासना में सफलता प्राप्त करने के लिए सहायक परिस्थितियाँ

1. पूर्व जन्म के संस्कार।
2. सत्य विद्या का ज्ञान।
3. सत्संग।
4. तीव्र इच्छा।
5. आवश्यक साधनों की उपलब्धि।
6. उपासना करने की सही विधि व प्राणायाम का ज्ञान।
7. पूर्ण पुरुषार्थ व सत्य आचरण।
8. ईश्वर स्तुति-प्रार्थना-उपासना का निरन्तर अभ्यास।
9. यम नियम का जीवन में पालन।
10. उपयुक्त वातावरण व संगति।

ईश्वर उपासना के लाभ

1. सुबुद्धि की प्राप्ति अर्थात् बुद्धि का विकास।
2. स्मरण शक्ति की स्थिरता व बढ़ना।
3. जीवन की सभी क्रियाओं में एकाग्रता।
4. आत्म शुद्धि एवं इन्द्रियों व मन पर नियन्त्रण होना।
5. ईश्वर, प्रकृति व आत्मा का सही ज्ञान होना।
6. जीवन में सदैव, विपरीत परिस्थितियों में भी, समाधि (प्रसन्नता) बने रहना।
7. अच्छे संस्कारों की जाग्रति एवं निष्काम कर्म करने की प्रेरणा मिलना।
8. वेदानुसार शुभ आचरण द्वारा सभी प्राणियों के मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु प्रेरित होना। विचार प्रदूषण से मुक्ति होना।
9. पाप कर्म से दूर रहने की प्रकृति बनना।
10. ईश्वर के प्रति श्रद्धा, विश्वास का बढ़ना व ईश्वर आनन्द की प्राप्ति।
11. शारीरिक व मानसिक दु:खों को सहन करने की शक्ति प्राप्त होना।
12. दीर्घ आयु की प्राप्ति,
13. धन दान एवं समय दान करने की प्रवृत्ति का विकास।

ईश्वर उपासना (वैदिक विधि से) न करने से हानियाँ

1. अपने व्यवहार से अन्यों को दुखी करना।
2. कृतज्ञता का अभाव होना।
3. इन्द्रियों व मन का दास होना।
4. वैदिक व धार्मिक विषयों को पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ होना।
5. विपरीत परिस्थितियों और दु:ख को सहन न कर पाना।
6. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार पर संयम न रख पाना।
7. उपासना से प्राप्त होने वाले ईश्वरीय गुण-विशेष ज्ञान, बल, आनन्द, निर्भयता, स्वतन्त्रता आदि से वंचित रहना।
8. जीवन की समस्याओं का ठीक प्रकार से समाधान न कर पाना एवं फलस्वरूप दु:खी होना।
9. यम नियम का पालन न कर पाना।
10. पञ्चमहायज्ञ का अनुष्ठान न कर पाना।

प्रार्थना का परिणाम हृदय के द्वारा आत्मा पर होता है

- विनोवा भावे

जो मनुष्य ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख होता है।

- ऋषि दयानन्द

वैदिक सन्ध्या उपासना विधि

वैदिक सन्ध्योपासना महर्षि दयानन्द सरस्वती (आर्य समाज के संस्थापक) द्वारा प्रतिपादित है। इसका मुख्य उद्देश्य आत्म शुद्धि व ध्यान करना है। सन्ध्या करते समय मन्त्रों के अर्थों का चिन्तन करना, चिन्तन के अनुसार व्यवहार काल में आचरण करना ही प्रभु की वास्तविक उपासना है।

लेखक द्वारा प्राणायाम का प्रयोग करते हुए लिखी गई विधि 'वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि' पुस्तक में विस्तार से देखी जा सकती है। पुस्तक www.manavsanskar.com पर निःशुल्क download की जा सकती है। प्रत्येक मन्त्र के बाद, उच्चारण हेतु सहायता (सरल भावार्थ के साथ) भी दी गई है ताकि साधक सरलता से उच्चारण कर सकें।

श्वास-प्रश्वास द्वारा मन्त्र उच्चारण की विधि

(क) ध्यान को आज्ञाचक्र, हृदय, नाभि, मूलाधार या मन्त्र उच्चारण पर स्थिर करें।

(ख) धीरे-धीरे लम्बा गहरा श्वास नासिका से अन्दर लें (पूरक)

(ग) श्वास धीरे-धीरे छोड़ते हुए ओम् का उच्चारण करें।

ओ .....३.....म्

(ईश्वर सर्व रक्षक है - ऐसी मानसिक भावना बनाये रखें)

(घ) ओ३म् का उच्चारण व श्वास बाहर निकालने की क्रिया एक साथ समाप्त होनी चाहिए। श्वास पूर्ण रूप से बाहर निकलने के बाद कुछ समय के लिये श्वास बाहर ही रोकें (सूक्ष्म कुम्भक करें)

(ङ) तत्पश्चात् सूक्ष्म श्वास (सामान्य श्वास) ले और शेष मन्त्र का उच्चारण करें।

शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्त्रवन्तु नः।

नोट : उपरोक्त मंत्र उच्चारण विधि प्रत्येक मन्त्र के साथ अपनानी है अर्थात् ओ३म् व मन्त्र का उच्चारण श्वास प्रश्वास के साथ अलग-अलग दो चरणों में करना है।

यज्ञ (हवन) एवं मानव अधिकार संरक्षण...1

संसार में जितने भी परोपकार के कार्य हैं वे सब यज्ञ शब्द के वाच्य हैं। यज्ञ का अर्थ है देव पूजा, संगतिकरण और दान। जो विद्वानों का सत्कार करता है, भले पुरुषों की संगति करता है, दान देता है, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करता है- वह यज्ञ ही करता है। भौतिक यज्ञ में वैदिक मन्त्रों द्वारा अग्नि की पूजा ईश्वर की ही पूजा है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में होम करने का प्रयोजन बताया है। होम को हवन, यज्ञ, अग्निहोत्र और देवयज्ञ भी कहते हैं। इसमें, ईश्वर की आज्ञा का पालन करने की प्रेरणा प्राप्त करने के लिए, प्रत्येक मन्त्र के पहले ओ३म् का उच्चारण व चिन्तन करते हैं। ओ३म् का उच्चारण लम्बे, गहरे व धीमे श्वास बाहर निकालते हुये, करने से शरीर व मन में अलौकिक तरंगें पैदा होना शुरू हो जाती हैं जिससे मानसिक शान्ति मिलती है। तनाव दूर होता है। सकारात्मक सोच में वृद्धि होती है।

वैदिक विचारधारा के अनुसार हवन/यज्ञ हर संस्कार की आत्मा है। इसके बिना कोई भी संस्कार या शुभ कार्य नहीं हो सकता है। यज्ञ अग्नि में घी व सुगन्ध आदि पदार्थों का दान दिया जाता है। इस कर्म से हम सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र, अग्नि आदि देवताओं का आह्वान करते हैं। उनके उपकारों का आभार प्रकट करते हैं। परन्तु यह उपास्य देव नहीं हैं। उपास्य देव, देवताओं का देव, केवल परमात्मा ही है। अग्नि भी उसका एक गुणात्मक नाम है। लेकिन उसका निज नाम ओ३म् है। देवयज्ञ में हम ईश्वर के प्राकृतिक सौन्दर्य का ध्यान करते हुए वेद मंत्रों द्वारा ईश्वर का स्मरण करते हैं, उसकी उपासना करते हैं।

यज्ञ (हवन) एवं मानव अधिकार संरक्षण...2

नित्य हवन मन्त्र उच्चारण से हमारा मन अत्यन्त प्रसन्न, उत्साहित एवं आस्थावान हो जाता है। हमारी लोभ, मोह और अहंकार की प्रवृत्ति पर अंकुश लगता है। हमें दूसरों की सहायता व उनके मानव अधिकारों के संरक्षण की प्रेरणा मिलती है। यदि मन्त्रों का हिन्दी में अनुवाद करके बोला जाए तो उन मन्त्रों का पूर्ण रूप से वास्तविक भाव व्यक्त नहीं हो सकता। इसलिए मन्त्रों को उनके मूल रूप में बोलना ही उचित है। मन्त्र का प्रभाव निश्चित एवं स्थायी होता है जिसे मन्त्र का प्रयोग करने वाला व्यक्ति ही जानता है जो इसके अनेक शारीरिक व मानसिक लाभ उठाता है। इसके साथ-साथ मन्त्र का अर्थ व उसमें छिपी भावना का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए ताकि साधक अपने गुण, कर्म व स्वभाव को सुधारता हुआ मनुष्य मात्र का कल्याण कर सके। केवल मन्त्रों का स्वर सहित उच्चारण और यज्ञ क्रियाओं के अनुष्ठान मात्र से यज्ञ का पूर्ण फल मिलना असम्भव है।

जब तक हवन के वैदिक मन्त्र स्मरण नहीं होते तब तक आप पुस्तक से मन्त्र को पढ़कर हवन कर सकते हैं अथवा गायत्री मन्त्र से भी हवन कर सकते हैं।

परिवार, घर एवं समाज में सुख-शान्ति के लिए -

(क) नित्य-प्रातः सायं यज्ञ करें। अथवा
(ख) नित्य-प्रातः काल यज्ञ करें। अथवा
(ग) रविवार को साप्ताहिक यज्ञ करें। अथवा
(घ) अमावस्या और पूर्णमासी के दिन तो अवश्य ही यज्ञ करें।

हवन में प्रयोग होने वाली सामग्री में चार प्रकार के तत्वों का मिश्रण होता है। प्रथम रोगनाशक, दूसरे पौष्टिक, तीसरे सुगन्धिवर्धक और चौथे मीठे पदार्थ। जब यह तत्त्व गाय के घी के साथ मिलकर अग्नि में वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ आहुति के रूप में चढ़ाये जाते हैं तो इनसे अनेक लाभ होते हैं।

यज्ञ से लाभ .....(3)

1. परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त होता है।
2. धन, तेज की प्राप्ति के साथ-साथ हमारी आत्मा संस्कारित होती है।
3. हम सद्विचार, सत्कर्म व आनन्द की ओर प्रेरित होते हैं। विचार प्रदूषण से मुक्त होते हैं।
4. वेद मन्त्रों की आवृत्ति और कण्ठस्थ करने से वेद पुस्तकों की रक्षा के साथ-साथ ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना होती है।
5. हवन मन्त्र चित्त पर पड़े जन्म-जन्मान्तर के अशुद्ध संस्कारों को शुद्ध करते हैं।
6. मन्त्र उच्चारण व मानसिक ध्यान से हमारा मन उत्साह और आनन्द से प्रफुल्लित रहता है।
7. हवन द्वारा यम नियम के पालन की प्रेरणा, समाज सेवा व दान करने की शक्ति मिलती है। इससे हमारा शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है।
8. स्थूल पदार्थ अग्नि द्वारा सूक्ष्म हो जाने पर हमारे स्वास्थ्य को उत्तम बनाते हैं, औषधियों से युक्त शुद्ध वायु, श्वास प्रश्वास प्रक्रिया के द्वारा हमारे फेफड़ों में पहुँचती है जिससे शरीर की प्रतिरोधात्मक शक्ति बढ़ती है और आयु में वृद्धि होती है।
9. अग्नि में डाला हुआ पदार्थ नष्ट नहीं होता है। यह फैल जाता है, इससे पाँच भौतिक तत्त्वों की शुद्धि होती है और हम जड़ देवताओं के ऋण से मुक्त होते हैं।
10. अग्नि में डालने से पदार्थों के गुण बढ़ जाते हैं जिससे जल और वायु स्वच्छ होते हैं जिससे समाज में अनेक प्रकार के रोगों के कीटाणु नष्ट होते हैं। **फलस्वरूप सभी प्राणियों के मानव अधिकारों का संरक्षण होता है।**
11. हवन अनेक प्रकार के रोगों के इलाज में सहायक है।
12. हवन घर की वायु की शुद्धि के साथ-साथ वनस्पति जगत् के लिए उपयोगी वर्षा में भी सहायक है।

यज्ञ करने से पहले की तैयारी .....(4)

1. हवन में प्रयोग होने वाले बर्तन/वस्तुएं -

(i) एक छोटा हवन कुण्ड। साइज= 9"x9" गहराई=3" और नालीदार हवनकुण्ड का स्टैण्ड (जल सिंचन के लिए)।

(ii) आहुति हेतु घी डालने के लिए हैंडल वाला (चौड़े तल वाला) घृतपात्र।

(iii) सामग्री की आहुति डालने के लिए 6" डायामीटर की 1" गहरी प्लेट (यजमानों की संख्या के अनुसार)

(iv) आचमन पात्र 3" चौड़ी कटोरी (यजमानों की संख्या के अनुसार) हाथ धोने के लिए

(v) जल पात्र 2" गहरी व 2" चौड़ी कटोरी (यजमानों की संख्या के अनुसार)

(vi) स्रुवा (चम्मच) 10" से 12" लम्बा घी की आहुति डालने के लिए। यदि छोटे बच्चे को भी सामग्री की आहुति डालनी हो तो उसके लिए एक स्रुवा और लें ताकि सामग्री की आहुति डालते समय बच्चे का हाथ न जले।

(vii) जल (हवन कुण्ड के चारों तरफ छिड़कने के लिए) पात्र (छोटा लोटा)

(viii) एक चिमटा व एक ज्योति पात्र (दिया, दीपक)।

(ix) सामग्री रखने के लिए एक खुले मुंह वाला 2 किलो वाला डिब्बा।

(x) एक छोटा 1 किलो का प्लास्टिक का डिब्बा-मुश्क कपूर, ज्यौत वट, छुहारे और मासिच रखने के लिए।

(xi) एक प्लास्टिक की कटोरी-समिधायें रखने के लिए।

क्रम सं.- (i) से (vii) तक बताये गये पात्र यदि तांबे के हों तो अति उत्तम है।

(xii) चार सूती कुशन व लकड़ी की चौकियां (बैठने के लिए)।

(xiii) एक प्लास्टिक की टोकरी हवन में प्रयोग हुए खाली बर्तनों को रखने के लिए

यज्ञ-हवन प्रक्रिया की तैयारी .....(5)

1. शुद्ध साफ हवन कुण्ड स्थापित करें। रखें
2. हवन कुण्ड में 5-10 ग्राम सामग्री डालें।
3. 5-7 टिक्की मुश्क कपूर की डालें और 3-4 टिक्की अलग से रखें।
4. प्रत्येक जल पात्र में लगभग आधा जल रखें। उसके साथ आचमन पात्र (कटोरी) रखें।
5. 5 समिधायें (कुण्ड के आकारानुसार-लगभग 6''-7'' लम्बी और 1''-1½'' मोटी व 4-5 समिधा के छोटे-छोटे टुकड़े हवन कुण्ड के पास रखें।
6. हैण्डल वाले घी पात्र में घी गर्म करके कुण्ड के साथ रखें। घी पात्र में तीन समिधायें भी रख दें। **घी को हवन कुण्ड की अग्नि पर गर्म नहीं करना चाहिए।**
7. रुई की बट घी में डुबोकर दीपक पात्र में रखें।
8. हवन सामग्री को प्लेट में डालकर रखें। सामग्री गौ घृत मिश्रित कर लेनी चाहिए।

ईश्वरीय सान्निध्य
पूर्णतया आनन्दित-तृप्त-संतुष्ट
करता है
– डॉ. राधावल्लभ चौधरी

यज्ञ सम्बन्धित कुछ आवश्यक बातें-1

1. यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह ठीक विधि विधान, अनुशासन एवं शक्ति के साथ की जानी चाहिये।
2. यज्ञ का स्थान स्वच्छ व पवित्र होना चाहिए। दैनिक यज्ञ का समय निश्चित होना चाहिये।
3. आयुर्वेद में गाय का घी हवन में प्रयोग करना अधिक उचित माना गया है। इसमें अधिकतम विष प्रतिरोधक शक्ति होती है। अत: घी की आहुति देने वाला चम्मच/स्रुवा कुछ बड़ा हो तो अच्छा है।
4. आम, पीपल, बरगद, बेल, गूलर, पलाश की लकड़ी हवन के लिए उत्तम है। इनसे बहुत कम कार्बन डाई आक्साइड निकलती है। आवश्यकता से अधिक या मोटी समिधाएँ भी यज्ञ कुण्ड में नहीं डालनी चाहियें।
5. समिधायें सूखी, कीट रहित, बिना गांठ वाली, पवित्र व हवन कुण्ड के आकार के अनुसार होनी चाहिए। किसी भी आर्यसमाज से या या बाजार से समिधायें ले सकते हैं। घर पर हवन कुण्ड के आकार के अनुसार (कुल्हाड़ी से) उन्हें छोटा व पतला करके पहले से ही रख लेना चाहिये।
6. तांबे के हवन कुण्ड में कीटनाशक शक्ति अधिक होती है। अत: लोहे की अपेक्षा तांबे का कुण्ड प्रयोग करना बहुत अच्छा है। हवन कुण्ड अधिक गहरा नहीं होना चाहिये।
7. यज्ञ सामग्री ऋतुओं के अनुसार होने से उत्तम लाभ देती है। आजकल MDH की सामग्री अच्छी है। इसमें ऋतु के अनुसार अन्य सामग्री, जड़ी बूटियाँ मिलाई जा सकती हैं।
8. जलती हुई तीव्र अग्नि में ही आहुति देनी चाहिए ताकि धुंआ कम से कम हो। धुंआ कम करने के लिए अधिक घी व सूखी समिधा का प्रयोग करें। हवन करते समय हवन कुण्ड में स्रुवा या चिमटे से हवन अग्नि को नहीं हिलाना चाहिए। क्रमश: .....

यज्ञ सम्बन्धित कुछ आवश्यक बातें-2

8. हवन करते समय यज्ञोपवीत पहनना चाहिये। श्वास प्रश्वास का भी उचित प्रयोग करना चाहिए।
9. यज्ञ कर्म के समय मन स्थिर व शान्त रखना चाहिए। कमर, गर्दन व सिर सीधा रखना चाहिये।
10. यज्ञ पूर्ण श्रद्धा, प्रेम व ईश्वर प्राणिधान की भावना से करना चाहिए। यज्ञ करते समय गप-शप या सांसारिक बातें नहीं करनी चाहियें। यज्ञ प्रार्थना में ताली बजाना वर्जित है।
11. यज्ञ में काम आने वाले पात्र घर में प्रयोग नहीं करने चाहियें।
12. यज्ञ पूर्ण होने पर पुरोहित को, उदारता के साथ, पर्याप्त दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये। पर्याप्त दक्षिणा के बिना यज्ञ निष्फल माना जाता है।
13. यज्ञ करते समय कुर्ता पजामा या कुर्ता धोती ही पहनना चाहिये। काले वस्त्र व पेन्ट नहीं पहनने चाहिये।
14. यज्ञ वेदी पर एक से अधिक यजमानों (मुख्य यजमान) का बैठना अवैदिक माना जाता है।
15. यज्ञ करते समय या यज्ञ के बाद हवन कुण्ड के आस-पास गिरी सामग्री को हवन कुण्ड में नहीं डालना चाहिये।
16. हवन मन्त्रों के उच्चारण के बीच में प्रवचन करना (सलाह देना) निषेध है।
17. यज्ञ-प्रक्रिया में बारम्बार 'इदन्न मम' वाक्य का प्रयोग होता है। इसका अर्थ है-इसमें मेरा कुछ नहीं अर्थात् लोक-कल्याण के लिए कार्य करना। यह भावना यज्ञ का सार है। पूर्ण लाभ मन्त्र का ठीक अर्थ जानकर उसी के अनुसार आचरण करने से मिलता है, समाज-सेवा करने से मिलता है न कि मन्त्र उच्चारण मात्र से।

क्रमशः .....

हवन मन्त्र उच्चारण की विधि व इसके लाभ

जिन मन्त्रों से हवन किया जाता है उन्हें ''हवन मन्त्र'' कहते हैं। हवन में मन्त्र उच्चारण करते समय श्वास-प्रश्वास की क्रियाओं का उपयोग करने से अनेक लाभ हैं। अग्नि को पूर्ण रूप से प्रज्जवलित होने में पर्याप्त समय मिल जाता है। श्वास-प्रश्वास द्वारा इन क्रियाओं के करने से नाड़ी तन्त्र सुव्यवस्थित होता है। फेफड़े शक्तिशाली होते हैं, इन्द्रियों पर संयम रहता है, शरीर के अनेक विकार दूर होते हैं, मानसिक एकाग्रता बढ़ती है, मन्त्र के भावार्थ का चिन्तन करने में पर्याप्त समय मिल जाता है। मन शांत व संयम में हो जाता है। फलस्वरूप शरीर स्वस्थ रहता है व दीर्घ आयु प्राप्त होती है। ईश्वरीय आनन्द मिलता है।

हवन मन्त्र उच्चारण की 2 विधियाँ

विधि नं0 1 :- (क) प्रत्येक हवन मन्त्र को दो भागों में बांट दें।

(ख) प्रत्येक मंत्र के उच्चारण से पहले लम्बा गहरा श्वास (यथा शक्ति) अन्दर लें (पूरक करें)

(ग) श्वास को छोड़ते हुए लम्बे स्वर में प्रथम भाग ओ३म् का उच्चारण (ईश्वर सर्वरक्षक है, इस भावना के साथ) करें। (आधा श्वास बाहर निकलने तक)

(घ) बची हुई श्वास छोड़ते हुए मन्त्र के शेष भाग का उच्चारण करें।

(ङ) स्वाहा शब्द के उच्चारण पर पूर्ण श्वास बाहर निकाल दें।

(च) क्रियायें - जल पीना, अंग स्पर्श करना, आहुति डालना आदि मन्त्र के पूर्ण उच्चारण के बाद करें।

(छ) इसी प्रकार प्रत्येक मंत्र का उच्चारण करें।

(ज) लम्बा, गहरा, धीमा श्वास, मौसम, आयु व स्वास्थ्य के अनुसार ही लें अर्थात् सर्दी में अधिक गहरा श्वास न लें। उक्त रक्तचाप के साधक भी अधिक गहरा, लम्बा व तीव्र श्वास न लें। श्वास आयु व स्वास्थ्य की स्थिति के अनुसार ही लें।

किसी भी बीमारी से ग्रस्त साधक श्वास प्रश्वास की क्रियायें करने से पहले अपने चिकित्सक से परामर्श लें।

क्रमश:.....

आचमन मन्त्र के उच्चारण का उदाहरण

(1) लम्बा गहरा श्वास लें।

(2) ओ३म् का उच्चारण (ईश्वर सर्वरक्षक है-इस भावना के साथ) करें।
(पहला भाग)
ओ..... ३ .....म् (लगभग आधा श्वास छोड़ें)

(3) अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा (पूर्ण श्वास बाहर निकालते हुए)

(4) स्वाहा शब्द के उच्चारण के बाद बाकी क्रियायें करें एवं मंत्र के भावार्थ का चिन्तन करें।

प्रत्येक मन्त्र का उच्चारण उपर्युक्त विधि से करने से यज्ञ द्वारा पूर्ण शारीरिक व मानसिक लाभ मिलता है।

विधि नं0 2 :-

(क) मन्त्र का उच्चारण विधि नं0 1 के अनुसार ही किया जाता है।

(ख) मन्त्र का उच्चारण करते समय आँखों को बन्द करते हैं।

(ग) स्वाहा बोलने पर या मन्त्र का उच्चारण पूर्ण होने के बाद नेत्र खोलते हैं और घी/सामग्री की आहुति स्वाहा उच्चारण के साथ या तुरन्त बाद में दी जाती है।

(घ) मन्त्र का उच्चारण करते हुए ''ओ३म्'' के अर्थ (सर्वरक्षक) एवं मन्त्र के भावार्थ का मानसिक चिन्तन चलता रहता है।

(ङ) (i) उपरोक्त विधि से प्रत्येक मंत्र द्वारा आहुति दी जाती है। अन्य क्रियायें की जाती हैं।

(ii) मन पूर्ण रूप से ईश्वर चिन्तन में लगा रहता है। आध्यात्मिक उन्नति होती है।

आहुति डालने की विधि

हवन में जो व्यक्ति घृत की आहुति और समिधा दान करता है उसे यजमान कहते हैं। यजमान ही यज्ञ की अग्नि प्रज्जवलित करता है। वह ही यज्ञ का सारा व्यय भार सहन करता है।

1. यदि आप स्वयं अकेले ही हवन कर रहे हैं तो मन्त्र उच्चारण के बाद पहले सीधे हाथ से सामग्री की आहुति देवें। तत्पश्चात् घी की आहुति देवें।
2. यदि आप किसी अन्य यजमान (व्यक्ति) के साथ हवन कर रहे हैं तो मुख्य यजमान घी की आहुति देवे और दूसरा व्यक्ति सामग्री की।
3. यदि आप अपनी पत्नी के साथ हवन कर रहे हैं तो पति-पत्नी में से कोई भी घी या सामग्री की आहुति दे सकता है। **पत्नी पति के सीधे तरफ बैठती है।**
4. यदि पति-पत्नी यजमान (मुख्य) हैं तो पति घी की व पत्नी सामग्री से आहुति देवे।
5. यदि एक से अधिक व्यक्ति हवन एक साथ कर रहे हैं तो मुख्य यजमान घी से व अन्य सभी व्यक्ति सामग्री से आहुति देवें।

हवन के बारे में कुछ भ्रान्तियाँ

अग्निहोत्र के बारे में प्रायः दो भ्रान्तियां हैं-(1) इसमें लकड़ियाँ जलाने से कार्बन डाई आक्साइड गैस पैदा होती है। (2) शुद्ध घी को आग में डालना बुद्धिमानी नहीं है।

कार्बन डाई आक्साइड वायु में हर जगह मिला-घुला रहता है। कहीं मात्रा कम-कहीं अधिक। जैसे घने शहरों में अधिक तथा पहाड़ों में कम। अतः इसकी सीमा से अधिक मात्रा हानिकारक है। लेकिन हवन से निकली कार्बन डाई आक्साइड सीमा में होती है और शुद्ध घी व रोगनाशक सामग्री इसके दुष्प्रभाव को और कम कर देती है। इसके साथ-साथ हवन के लाभों को देखते हुए इस पर किया गया आर्थिक व्यय व्यक्तिगत स्वास्थ्य आध्यात्मिक उन्नति व सामाजिक स्वास्थ्य के लिए उचित है।

क्रमशः.....

हवन-यज्ञ-अग्निहोत्र विधि (1)

(गायत्री मंत्र द्वारा)

सर्वप्रथम हवन की तैयारी वैदिक विचार 121-122 के अनुसार करें।

1.(क) शुद्ध आसन में बैठ जायें। यदि घुटनों में दर्द रहता है तो चौकी का प्रयोग करें। कमर में दर्द है तो कुर्सी का प्रयोग करें।

(ख) ओ३म् का लम्बे स्वर में तीन बार उच्चारण (ईश्वर सर्वरक्षक है-भावना के साथ) करें।

(ग) एक बार गायत्री मंत्र का उच्चारण करें।

(घ) गायत्री मन्त्र के अर्थ का (कविता रूप में) उच्चारण करें।

(ङ) इसके बाद सीधे हाथ में शुद्ध जल (जल पात्र से) लेकर तीन बार पियें अर्थात् आचमन करें और निम्न प्रार्थना बोलें :-

हे प्रभो! यह जल प्राणियों का आधारभूत है। हमारे लिए सुखदायक हो। हमें सत्य, कीर्ति, ऐश्वर्य और सम्पत्ति की प्राप्ति कराइये।

शारीरिक अंगों के दोषों को दूर करने एवं उनकी स्वस्थता और पवित्रता बनाये रखने के लिए बायें हथेली में थोड़ा सा जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा व अनामिका उंगलियों से निम्नलिखित अंग एक-एक करके स्पर्श करें।

2. (क) मुख (होंठ स्पर्श करें)
   (ख) दोनों नासिकायें (पहले दायें फिर बायीं तरफ)
   (ग) दोनों आंख (पहले दायें फिर बायीं तरफ)
   (घ) दोनों कान (पहले दायें फिर बायीं तरफ)

..... क्रमशः

हवन विधि-(2)

हवन विधि-(2)

(ङ) दोनों बाहें (पहले दायें फिर बायीं तरफ)

(च) दोनों जंघा (पहले दायें फिर बायीं तरफ)

(छ) बचा हुआ जल पूरे शरीर पर छिड़कें।

प्रार्थना :

हे प्रभो! मेरे शरीर, सभी ज्ञान-इन्द्रियों और कर्म-इन्द्रियों को स्वस्थ व पवित्र कीजिए।

3.(क) अब माचिस से दीपक प्रज्जवलित करें। फिर चम्मच में 2-3 टिक्की कपूर लेकर दीपक से स्पर्श करके जलायें और हवन की अग्नि प्रज्जवलित करें। (हवन कुण्ड में डालें)

(ख) अब हवनकुण्ड में 4-5 छोटी-छोटी समिधाएं (लकड़ियां) डालें। उनके ऊपर 2-3 चम्मच घी डाल दें। दो समिधायें ऊपर रख दें। दोनों समिधाओं पर भी 1-1 चम्मच घी डाल देवें ताकि अग्नि पूर्ण रूप से प्रज्जविलत हो जाये।

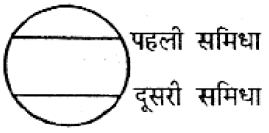

(ग) अब प्रत्येक गायत्री मंत्र के उच्चारण के बाद 1-1 करके तीन समिधायें घृत मे भिगोई हुई बारी-बारी से हवन कुण्ड में रखें।

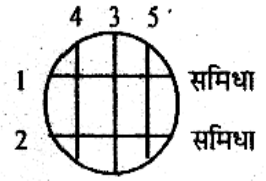

(घ) अब 5 चम्मच घी, एक-एक करके सभी 5 समिधाओं पर डाल दें।

4. अब हवनकुण्ड के चारों तरफ जल सिंचन करें अर्थात् थोड़ा थोड़ा जल छिड़कें। क्रमशः .....

.

हवन विधि-(3)

5. अब गायत्री मंत्र के प्रत्येक पूर्ण उच्चारण के बाद स्वाहा बोलकर घी और सामग्री की 11 आहुतियाँ दें।
6. अब निम्न मन्त्र से एक-एक करके तीन आहुतियाँ घी और सामग्री की देवें। (सामग्री के स्थान पर हलवा भी डाल सकते हैं।)

ओ३म् सर्वं वै पूर्णँ स्वाहा।।1।।
ओ३म् सर्वं वै पूर्णँ स्वाहा।।2।।
ओ३म् सर्वं वै पूर्णँ स्वाहा।।3।।

अन्तिम आहुति के साथ एक छुआरा या मीठी खील या कुछ देशी घी का हलवा हवन कुण्ड में डालें।

भावार्थ - हे प्रभो! जो प्रार्थनायें हमने इस यज्ञ में की हैं, वे सच्चे हृदय की पुकार हैं! स्वीकार कीजिये। प्रभो! मेरे द्वारा दी गई सम्पूर्ण सामग्री सबके लिए कल्याणकारी हो। इसको विस्तार दीजिए।

पांच श्वास प्रश्वास क्रियायें
(पूर्ण आहुति के बाद)

यज्ञ में डाली गई घृतयुक्त जड़ी-बूटियों वाली सामग्री से हविर्धूम उठता है। श्वास द्वारा हम इसे ग्रहण करते हैं। यह हविर्धूम श्वास द्वारा यज्ञकर्ता व यज्ञशाला में बैठे सभी व्यक्तियों को फेफड़ों में भरता है। इस वायु का रक्त से सीधा सम्पर्क होता है। यह वायु अपने में विद्यमान रोग-निवारण परमाणुओं को रक्त में पहुंचा देता है, जो कि शरीर के रोग-कृमियों को निष्क्रिय या नष्ट कर देती है। फलस्वरूप रक्त के अनेक दोष प्रश्वास द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते हैं। यह लेखक का व्यक्तिगत मत व अनुभव है। अत: हवन के पश्चात् वहीं बैठकर शारीरिक स्वास्थ्य वा आध्यात्मिक उन्नति एवं लोक कल्याण के लिये निम्नलिखित 5 मन्त्रों का श्वास प्रश्वास विधि से उच्चारण करें। विधि आगे दी गई है।

हवन विधि-(4)

(क) लम्बा गहरा धीमा श्वास अन्दर लें।

(ख) श्वास छोड़ते हुए धीरे-धीरे मन्त्र का उच्चारण करें।

1. ओ .....3 .....म् (लगभग आधा श्वास छोड़ें)
आनन्दम् (पूर्ण श्वास बाहर निकालते हुये)

(ग) दो तीन सामान्य श्वास लें व फिर भावार्थ का उच्चारण करें - हे प्रभो! आप मुझे आनन्द दे रहे हैं। सभी प्राणियों को आनन्द दीजिए। इसी प्रकार अन्य 4 मन्त्रों का उच्चारण करें।

3. **ओ३म् आरोग्यम्।**
भावार्थ - हे प्रभो! आप मुझे आरोग्यता दे रहे हैं। सभी प्राणियों को आरोग्यता दीजिए।

3. **ओ३म् शुद्धि।**
भावार्थ - हे प्रभो! आप मुझे शुद्धि व पवित्रता दे रहे हैं। सभी प्राणियों को शुद्धि एवं पवित्रता दीजिए।

4. **ओ३म् यम नियम।**
भावार्थ - हे प्रभो! आप मुझे यम नियम पालन करने की प्रेरणा दे रहे हैं। सभी मनुष्यों को ऐसी प्रेरणा दीजिए।

5. **ओ३म् पञ्चमहायज्ञम्।**
भावार्थ - हे प्रभो! आप मुझे पञ्च महायज्ञ करने की बुद्धि और शक्ति दे रहे हैं। सभी मनुष्यों को ऐसी शक्ति दीजिए। प्रभो! सभी मनुष्य केवल आपकी ही स्तुति-प्रार्थना-उपासना करें। एक अच्छे समाज का निर्माण करें।
अब मंगल कामना मंत्र का उच्चारण करें।

मंगल कामना मंत्र / प्रार्थना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

सबका भला करो भगवान्, सब पर दया करो भगवान्।
सब पर कृपा करो भगवान्, सब का सब-विधि हो कल्याण।।
हे ईश सब सुखी हों, कोई न हो दुःखारी।
सब हों निरोग भगवन्, धन-धान्य के भण्डारी।।
सब भद्र भाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों।
दुःखिया न कोई होवे, सृष्टि में प्राणधारी।।

प्रार्थना

सुखी बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय।
यह अभिलाषा हम सबकी, भगवन् पूरी होय।।
विद्या, बुद्धि, तेज, बल, सबके भीतर होय।
दूध-पूत धन-धान्य से वंचित रहे न कोय।।
आपकी भक्ति-प्रेम से, मन होवे भरपूर।
राग-द्वेष से चित्त मेरा, कोसों भागे दूर।।
मिले भरोसा नाम का, हमें सदा जगदीश।
आशा तेरे धाम की, बनी रहे मम ईश।।
हमें बचाओ पाप से, करके दया दयाल।
अपना भक्त बनाय-कर, हमको करो निहाल।।
दिल में दया उदारता, मन में प्रेम अपार।
धैर्य हृदय में वीरता, सब को दो करतार।।
नारायण प्रभु आप हो, पाप-विमोचन-हार।
क्षमा करो अपराध सब, कर दो भव से पार।।
हाथ जोड़ विनती करूँ, सुनिये कृपानिधान।
साधु-सङ्गत-सुख दीजिये, दया नम्रता दान।।

यज्ञ प्रार्थना

पूजनीय प्रभो!
हमारे, भाव उज्ज्वल कीजिए,
छोड़ देवें, छल-कपट को, मानसिक बल दीजिए।

पूजनीय प्रभो!
वेद की बोलें ऋचाएँ, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक-सागर से तरें।।

पूजनीय प्रभो!
अश्वमेधादिक रचायें, यज्ञ पर उपकार को।
धर्म-मर्यादा चलाकर, लाभ दें संसार को।।

पूजनीय प्रभो!
नित्य श्रद्धा-भक्ति से, यज्ञादि हम करते रहें।
रोग-पीड़ित विश्व के, सन्ताप सब हरते रहें।।

पूजनीय प्रभो!
भावना मिट जाये मन से, पाप-अत्याचार की।
कामनाएँ पूर्ण होवें, यज्ञ से नर-नार की।।

पूजनीय प्रभो!
लाभकारी हों हवन, हर प्राणधारी के लिए।
वायु जल सर्वत्र हो, शुभ गन्ध को धारण किये।।

पूजनीय प्रभो!
स्वार्थ भाव मिटे हमारा, प्रेम-पथ विस्तार हो।
इदं न मम का सार्थक, प्रत्येक में व्यवहार हो।।

पूजनीय प्रभो!
हाथ जोड़ झुकाए मस्तक, वन्दना हम कर रहे।
'नाथ' करुणा रूप करुणा, आपकी सब पर रहे।।

पूजनीय प्रभो!
हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल-कपट को, मानसिक बल दीजिए।

शान्तिपाठ

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ् शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषध्यः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ् शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

उच्चारण हेतु सहायता :

ओ ..... ३.....म्।

द्यौः शान्तिर् अन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिर् आपः शान्तिर् ओषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर् विश्वे देवाः शान्तिर् ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्ति रेव शान्तिः सा मा शान्ति रेधि।।

ओ ..... ३.....म्।

यदि शान्तिपाठ का उच्चारण न कर सकें तो

ओ३म् शान्तिः शान्तिः बोलकर यज्ञ हवन पूर्ण करें।।

ज्ञान ऐसा वरदान है,
जो सम्पूर्ण जीवन को
बदलने की क्षमता रखता है।
- डॉ. राधा वल्लभ चौधरी

आध्यात्मिक लक्ष्य पाने वाले,
सुख शान्ति
अधिक पाते हैं।
- डॉ. राधा वल्लभ चौधरी

यज्ञ (हवन) की सूक्ष्म विधि-1

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में घर, परिवार एवं समाज में सुख शान्ति के लिए प्रतिदिन यज्ञ करने का प्रयोजन बताया है। इसमें, ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करने की प्रेरणा प्राप्त करने के लिए, प्रत्येक मन्त्र से पहले ओ३म् का उच्चारण व ईश्वर के गुणों का चिन्तन करते हैं। वैदिक मन्त्रों द्वारा अथवा गायत्री मन्त्र द्वारा यज्ञ (श्वास-प्रश्वास के साथ) करने की पूर्ण विधि व इसके लाभ आदि लेखक द्वारा लिखित पुस्तक 'वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि' में विस्तार रूप से दी गई है। यह पुस्तक www.manavsanskar.com पर नि:शुल्क उपलब्ध है।

वर्तमान व्यस्त जीवन में, भोगवाद के वातावरण एवं वातानुकूलित/ आधुनिक निवास स्थान की परिस्थितियों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि साधक कभी-कभी समिधा व सामग्री से यज्ञ करने में अपनी असमर्थता महसूस करते हैं। इन संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए साधकों एवं गृहस्थियों के लिए यहाँ पर हवन की सूक्ष्म विधि भी दी जा रही है, ताकि साधक हवन नित्य कर सकें। कृपया ध्यान दें कि यह सूक्ष्म विधि वैदिक यज्ञ का विकल्प नहीं है। फिर भी आध्यात्मिक दृष्टि से लाभदायक है। इसलिए जब साधक व गृहस्थी सामग्री व समिधा से, निवास स्थान की प्रतिकूल परिस्थिति में, यदि यज्ञ करने में असमर्थ हों, तब इस विधि का उपयोग किया जाता है।

इस विधि में भी यज्ञ (हवन) वैदिक मन्त्रों अथवा गायत्री मन्त्र के अनुसार ही किया जाता है। देव यज्ञ का सम्पूर्ण वैदिक विधि (सरल मन्त्र उच्चारण द्वारा) एवं गायत्री मन्त्र द्वारा लेखक की पुस्तक वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि में दी गई है।

हवन की तैयारी व हवन विधि में निम्नलिखित परिवर्तन है -

1. हवन कुण्ड के स्थान पर एक बड़ी थाली व पीतल के ज्योति पात्र (थोड़ा बड़ा सा पात्र) का इस्तेमाल किया जाता है।
2. समिधा व सामग्री के स्थान पर केवल देशी घी व पूजा बत्ती (फूल बत्ती) का प्रयोग किया जाता है।

क्रमश: .....

यज्ञ (हवन) की सूक्ष्म विधि-2

3. देशी घी को हवन शुरू करने से पहले, एक अलग (लोहे की) कटोरी में थोड़ा सा गर्म किया जाता है। 4. घी में थोड़ा सा मुश्क कपूर, काला दाना, सूखी गिलोय, गुग्गुल व लोबान आदि भी डालकर गर्म कर सकते हैं। इससे दीपक जलने के बाद वातावरण सुगन्धित व कीटनाशक बनता है।

विधि

1. थाली के बीच में ज्योति पात्र रखें। 2. ज्योति पात्र में एक फूल बत्ती को घी में डुबोकर सीधा रखें। फूल बत्ती के मुँह पर थोड़ा सा मुश्क कपूर का पाउडर लगा लें। 3. फूलबत्ती को मन्त्र के साथ अथवा बिना मंत्र उच्चारण किये, प्रज्जवलित करें। 4. इसके बाद प्रत्येक वैदिक मंत्र अथवा गायत्री मंत्र के बाद स्वाहा बोलने पर चम्मच से 2-3 बूंदें घी की कटोरी में से लेकर ज्योति पात्र में डालें। 5. यज्ञ की अन्य क्रियायें वैदिक विधिनुसार ही करें। जिन साधकों को वैदिक यज्ञ क्रियायें नहीं आतीं, वे बिना औपचारिकताओं के भी यज्ञ कर सकते हैं अथवा किसी आर्यसमाज में जाकर यह क्रियायें सीख सकते हैं।

सूक्ष्म विधि के लाभ

1. प्रत्येक घर में थाली, ज्योति पात्र व घी सदैव उपलब्ध होता है। अत: इस विधि से यज्ञ/हवन किसी भी स्थान (आधुनिक अथवा वातानुकूलित घर अथवा विदेश) में आसानी से किया जा सकता है। 2. समिधा व सामग्री के अभाव में भी वैदिक मन्त्रों द्वारा यज्ञ (प्रतिकूल परिस्थितियों में) सम्पन्न करके नित्य आध्यात्मिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। 3. वैदिक मन्त्रों के उच्चारण व चिन्तन का पूर्ण लाभ यज्ञकर्ता को मिलता है। जीवन में सकारात्मक परिवर्तन आता है। 4. यज्ञ करने में बहुत कम समय लगता है। अत: व्यस्त व्यक्ति इसको प्रतिदिन सुगमता से अपने घर में रोज कर सकते हैं। 5. यज्ञ प्रात:काल समिधा-सामग्री द्वारा व सायंकाल दीपक द्वारा करके दोनों समय में यज्ञ का लाभ आसानी से उठाया जा सकता है।

समाज में प्रचलित कुछ मान्यतायें व उनकी सत्यता-1

आजकल समाज में योग साधना को लेकर विभिन्न प्रकार की मान्यतायें प्रचलित हैं। आइये, कुछ मान्यताओं का चिन्तन करते हैं।

1. योग मार्ग बहुत कठिन है -

आजकल साधारण व्यक्ति ध्यान साधना अथवा योग मार्ग पर चलने से पहले ही डरने लगता है। वह सोचता है कि योग मार्ग सांसारिक सुख में बाधा डालता है। **यह एक मिथ्या है।** योग मार्ग सरल और पूर्ण रूप से सुख शान्ति देने वाला है। यह संसार छोड़ने की बात नहीं करता है बल्कि संसार में रहते हुए शुभ आचरण व शुभ कर्म करने की प्रेरणा देता है ताकि हम परमात्मा के कुछ गुण, कर्म, स्वभाव को अपनाकर जीवन के लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकें। योग मार्ग पर चलते ही धीरे-धीरे सभी बाधायें दूर होने लगती हैं। साधक को ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति होने लगती है।

2. ईश्वर की कृपा होगी तो भक्ति होगी -

संसार के सभी कार्य करने के लिए हमें किसी न किसी का सहयोग अवश्य लेना पड़ता है। केवल ईश्वर भक्ति-उपासना ही ऐसा कार्य है जो व्यक्ति को स्वयं ही करना होता है। ईश्वर की कृपा भी उन्हीं पर होती है जो स्वयं भक्ति, ध्यान, उपासना करना शुरू कर देते हैं। भक्ति का लाभ भी केवल उसी व्यक्ति को मिलता है जो इसको करता है।

3. ईश्वर भक्ति में ज्ञान बाधक है -

ईश्वर साक्षात्कार एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए भक्ति और वैदिक ज्ञान दोनों अनिवार्य हैं। किसी एक के अभाव में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। आर्ष ग्रन्थों, ऋषि ग्रन्थों और वैदिक ग्रन्थों का न केवल चिन्तन करना चाहिए बल्कि अपनी बुद्धि का भी प्रयोग करना चाहिए।

क्रमशः .....

समाज में प्रचलित कुछ मान्यतायें व उनकी सत्यता-2

ज्ञान रहित भक्ति करने वाले साधक को अन्त में पछतावा होता है। वह प्रभु आनन्द से वंचित रहता है। सफलता नहीं मिलती है। अत: भक्ति में ज्ञान बाधक नहीं सहायक है।

4. संशय और तर्क ईश्वर भक्ति में बाधक हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिये सत्य ज्ञान आवश्यक है। वैदिक ज्ञान की प्राप्ति अनिवार्य है। यह मान्यता कि आध्यात्मिक क्षेत्र में बुद्धि का प्रयोग नहीं करना चाहिये, सही नहीं है। आजकल तो समाज में इसी भ्रान्ति को फैलाकर चालाक गुरु लोग जनता को वैदिक धर्म व उपासना से दूर ले जाकर अपना स्वार्थ पूरा कर रहे हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में बिना बुद्धि द्वारा बातों को मानते जाना अपने जीवन को अन्धकार में ढकेलना है। अत: सत्य को जानने के लिये संशय का समाधान और तर्क द्वारा ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है।

5. बिना गुरु साधना करने वाले भक्त पर संकट आते हैं।

यह मान्यता है कि बिना गुरु भक्ति करने वाले की बहुत दुर्दशा होती है। बिल्कुल गलत है। जो व्यक्ति हृदय से परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना करता है, उसकी आज्ञाओं का पालन करता है, उसकी कभी भी हानि नहीं हो सकती। परमात्मा दयालु है, न्यायकारी है। वह किसी की भी हानि नहीं करता है। हां, यदि सच्चा गुरु मिल जाये तो आध्यात्मिक यात्रा सुगम हो जाती है। वास्तव में ईश्वर ही हमारा सच्चा गुरु है, गुरुओं का भी गुरु है। परमात्मा अपने भक्तों का मार्गदर्शन स्वयं करता है। उसको गुरु मानने पर भक्त को अहंकार नहीं होता है क्योंकि भक्त, स्वयं को, परमात्मा को पूर्णत: समर्पित कर देता है। अत: शारीरिक गुरु के अभाव में ईश्वर व उसके द्वारा दी गई वेद वाणी को ही गुरु मानकर आध्यात्मिक क्षेत्र में साधक को उन्नति करनी चाहिए। क्रमश: ....

समाज में प्रचलित कुछ मान्यतायें व उनकी सत्यता-3

6. किसी की कृपा से मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।

उपरोक्त मान्यता पूर्णतः गलत है। इस पर वे साधक ही विश्वास करते हैं जिनको ईश्वर द्वारा बनाई गई कर्म व्यवस्था, न्याय व्यवस्था का वास्तविक या पूर्ण ज्ञान नहीं है। यदि कृपा से मनोकामनायें पूरी हो जायें तो संसार में दु:ख की प्राप्ति किसी को भी न हो क्योंकि कोई भी प्राणी दु:ख नहीं चाहता है। वास्तविकता यह है कि जो काम होना है (परिश्रम द्वारा) वह हर हाल में होकर रहेगा और जो नहीं होना है (यदि साधक के पुण्य खत्म हो गये हैं) वह किसी भी विधि से नहीं होगा। अत: हमें दु:खों पर विजय पाने और सुख को प्राप्त करने के लिए हर संभव धर्मपूर्वक प्रयास करना चाहिये। परन्तु असहायों की तरह किसी की कृपा पर निर्भर नहीं रहना चाहिये।

7. ईमानदार और मेहनती व्यक्ति को भक्ति करने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान और कर्म आत्मा के दो पहिये हैं। जैसे एक पक्षी एक पंख से उड़ नहीं सकता, उसी प्रकार ज्ञान और कर्म में से किसी एक से विहीन होने पर मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त भक्ति में सफलता के लिए शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म व शुद्ध उपासना-तीनों आवश्यक है। **वास्तव में सही व ईमानदार व्यक्ति ही भक्ति करने का अधिकारी है। उसी पर ईश्वर की कृपा होती है।** कर्म करते समय मनुष्य से अनेक गलतियां होती रहती हैं जिनका पता भक्त को उपासना में लगता रहता है। अत: गलतियों को सुधारने, ईश्वर की कृपाओं का धन्यवाद करने और ईश्वरीय आनन्द प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर भक्ति करनी चाहिये। प्रात: सायं सन्ध्या करनी चाहिए। प्रतिदिन हवन करना चाहिये। जो केवल कर्म करता है और उसके साथ ज्ञानपूर्वक ईश्वर की आराधना, स्तुति, उपासना नहीं करता, उसके जीवन में कभी भी मस्ती नहीं आ सकती। क्रमश: .....

समाज में प्रचलित कुछ मान्यतायें व उनकी सत्यता-4

8. सभी भक्ति करेंगे तो संसार कैसे चलेगा?

ईश्वर अनादि काल से सृष्टि की बार-बार रचना, पालन व प्रलय करता आ रहा है। इस कार्य में वह किसी का सहयोग आदि नहीं लेता है। वास्तव में ईश्वर भक्ति द्वारा ही व्यक्ति अपनी त्रुटियों को सुधारता है। शुद्ध आचरण का पालन करता है। एक आदर्श समाज के निर्माण में ईश्वर भक्ति का मुख्य योगदान है। अत: ईश्वर भक्ति संसार की क्रियाओं में बाधक नहीं सहायक होती है।

9. कर्म बन्धन का कारण हैं।

जो व्यक्ति धर्मपूर्वक धन प्राप्त करता है उसका कर्म, बन्धन का कारण नहीं बनता है। कोई भी शुभ कर्म यदि फल की इच्छा से न किया जाये तो बन्धन का कारण नहीं बनता। वही लोग जन्म मरण के बन्धन में पड़ते हैं जो पाप कर्म भी करते हैं और पुण्य कर्म भी करते हैं और फल की अपेक्षा करते हैं।

10. ईश्वर पापों को क्षमा कर देता है।

ईश्वर न्यायकारी है। वह कभी भी पापों को-छोटा हो या बड़ा-किसी भी परिस्थिति में माफ नहीं करता है। कर्म व्यवस्था एवं न्याय व्यवस्था के अनुसार जैसे ही हम कोई कार्य-पुण्य या पाप-मन, वाणी या कर्म से करते हैं, वह सूक्ष्म शरीर में रिकार्ड हो जाता है और उसका पुरस्कार या दण्ड, उसी समय निर्धारित हो जाता है। परमात्मा पाप और पुण्य का अलग-अलग न्यायपूर्वक फल देता है। इस प्रक्रिया में कम या अधिक समय लगता है। अत: कोई भी कार्य करने से पहले उसके परिणाम पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए।

साधना हेतु शारीरिक शुद्धि के कुछ अचूक उपाय-1

मुँह की शुद्धि

(1) रात को सोने से पहले नित्य दांत किसी अच्छे आयुर्वेदिक मंजन या कॉलेगेट पेस्ट ब्रश पर लगाकर साफ करना चाहिये। ब्रश से दांत साफ करने के बाद पानी से तुरन्त कुल्ला न करें। दायें हाथ की तर्जनी अंगुली से मसूड़ों की मालिश करें। तालू पर भी अंगूठे से मालिश करें। मालिश करने के बाद पानी से कुल्ला आदि करें। इससे मुँह की सफाई ठीक होती है। मसूड़े मजबूत होते हैं। उनमें कभी दर्द नहीं होता है।

(2) उपरोक्त विधि से मुंह साफ करने के बाद सप्ताह में एक या दो बार मसूड़ों की मालिश तिल के तेल से करें। बायें हाथ की हथेली पर 8-10 बूंद तेल की लेवें। दायें हाथ की तर्जनी अंगुली से तेल लगाकर मसूड़ों की मालिश करें। अंगूठे से तालू पर भी तेल लगावें। मालिश के बाद कुछ भी न खायें व सो जायें। तिल के तेल की मालिश करने से पायरिया की शिकायत नहीं होती है। यदि मसूड़ों से खून निकलता है तो रूक जाता है। दांत मजबूत रहते हैं। तिल के तेल में चुटकी भर नमक और फिटकरी मिलाने पर अधिक लाभ होता है।

(3) प्रात:काल में भी प्राणायाम एवं व्यायाम करने से पहले उपरोक्त विधि (1) के अनुसार ही रोजाना मुंह साफ करें।

नासिकाओं की शुद्धि

प्राणायाम व श्वास-प्रश्वास की क्रियाओं का पूर्ण लाभ लेने के लिये साधक को दोनों नासिकायें सदैव साफ रखनी चाहियें। इसके लिये सप्ताह में कम से कम एक बार रात को दोनों नासिकाओं में सोते समय ड्रापर से बादाम या सरसों के तेल (5-5 बूंदें) डालनी चाहिये। तेल डालकर श्वास अन्दर लेवें ताकि तेल श्वास नली में आसानी से चला जाये। इससे नासिकाओं में मल नहीं जम पाता और जमा मल प्रात:काल में आसानी से श्वास-प्रश्वास की सूक्ष्म क्रिया करने से निकल जाता है। जुकाम और सिरदर्द भी नहीं होता है। क्रमश: .....

शारीरिक शुद्धि के उपाय (2)

गुदा की शुद्धि :

आजकल लगभग 80 प्रतिशत मनुष्यों को कब्ज या पूर्णतया मल त्याग न होने की शिकायत रहती है। मल द्वार साधारणत: अन्दर से साफ नहीं होता है केवल बाहर से ही साफ होता है। इससे अनेक प्रकार की पेट की बीमारियाँ होने की संभावना रहती है। इसके कारण दिनचर्या, जाप, ध्यान, सन्ध्या व मन की एकाग्रता में भी विभिन्न प्रकार की बाधाएं आती हैं। अत: सप्ताह में एक बार मल द्वारा **अच्छे साबुन** से साफ करना चाहिए। स्नान करते समय सीधे हाथ पर साबुन लगाकर मलद्वार पर लगायें। एक अंगुली को मलद्वार (Anus) में डालकर साफ करें। फिर पानी से मलद्वार धो लें। ऐसा करने से मलद्वार सदैव स्वच्छ रहता है।

कब्ज को दूर करने और बवासीर को दूर रखने में प्रात: स्नान करने से पहले (सप्ताह में 1 या 2 बार) गुदा में सीधे हाथ की मध्यमा अंगुली से सरसों का तेल या तिल का तेल लगाना भी लाभदायक है। तेल लगाने के बाद साबुन से हाथ धो लें। **योग में गुदा में तेल देने की क्रिया को गणेश क्रिया कहा जाता है।** इस क्रिया को करते समय हाथ के नाखून बढ़े हुए नहीं होने चाहिये। तेल गुदा की सूखती चर्म-टयूबों (मांस-पेशियों) को लचीला और चिकना रखती है। मल आसानी से बाहर निकलता रहता है। बवासीर की शिकायत नहीं होती है। बवासीर में भी लाभदायक है। पेट सदैव हलका रहता है। पेट साफ होने से एसीडिटी व गैस नहीं बनती है। दिनचर्या ठीक रहती है। सन्ध्या, जाप व ध्यान में पूर्ण रूप से मन लगता है।

शारीरिक शुद्धि के उपाय (3)

कब्ज में लाभदायक प्राकृतिक एनीमा

यदि बहुत अधिक कब्ज रहती हो तो केवल सुपाच्य और प्राकृतिक भोजन ही खायें। सप्ताह या 15 दिन में एक बार प्राकृतिक एनीमा घर पर ही ले सकते हैं। इससे बिना किसी कठिनाई के मल त्याग हो जाता है। इसकी विधि किसी भी प्राकृतिक उपचार केन्द्र में जाकर सीखी जा सकती है। इस विधि के अनुसार प्लास्टिक के पाइप की सहायता से गुदा के द्वारा रेक्टम तक पानी पहुंचाया जाता है, पानी को रेक्टम में ऊपर श्वास लेकर 1-2 मिनट के लिए रोका जाता है। फिर पानी के साथ जमा हुआ मल आसानी से बाहर आ जाता है। पेट हल्का हो जाता है। मलत्याग के बाद श्वास-प्रश्वास भी उत्तम ढगं से लिया जाता है। प्राकृतिक एनीमा घर में Jet Faucet और जैट स्प्रे के द्वारा भी लिया जा सकता है।

(i) Jet Faucet द्वारा एनीमा -

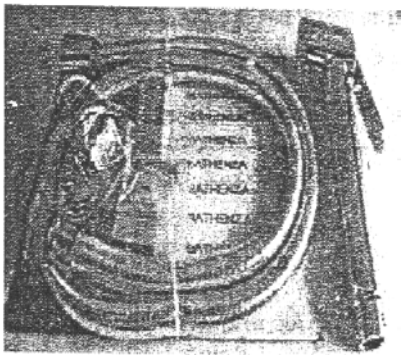

इंग्लिश शीट पर बैठ कर आगे की तरफ से Faucet में पानी चालू करके Faucet को गुदा के मुंह पर लगाकर गुदा को ऊपर की ओर खींचते हैं। इससे पानी रेक्टम के अन्दर चला जाता है। पानी को 30-40 सैकेण्ड के लिए रेक्टम में रोकते हैं। फिर पानी के साथ जमा हुआ मल मुलायम होकर स्वयं ही तुरन्त बाहर आना शुरू हो जाता है। सावधानी केवल यह है कि पानी स्वच्छ हो, अधिक गर्म या ठंडा न हो। यह सप्ताह या 15 दिन में एक बार ही लेना चाहिए।

अधिक सर्दी में इस विधि का प्रयोग न करें। प्राकृतिक एनीमा हानि रहित है।

शारीरिक शुद्धि के उपाय (4)

(ii) जैट स्प्रे द्वारा एनीमा :-

एक अच्छे प्लास्टिक का जेट स्प्रे लें। इसको Cistern के पास Plumber से दीवार में (टूटी की तरह) फिक्स करवा लें। जब कभी एनीमा लेना हो, जेट स्प्रे के मुंह पर थोड़ा सा सरसों का तेल लगावें। मुंह वाली साइड से (आगे से) गुदा के अन्दर 1-1½ इंच डालें और पानी थोड़ा सा खोल दें। गुदा को ऊपर की ओर खींचें। धीरे-धीरे पानी गुदा मार्ग से अन्दर जाने लगेगा। श्वास ऊपर लेकर 40-50 सैकण्ड या 1 मिनट पानी को अन्दर ही रोकें।

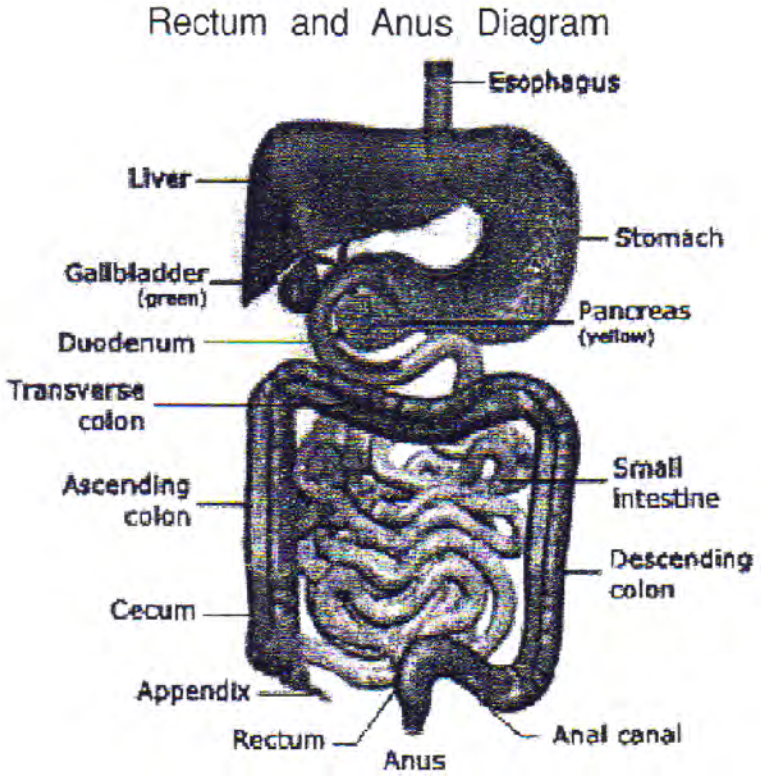

शारीरिक शुद्धि के उपाय (5)

जमा हुआ मल पानी के साथ स्वयं सुगमता से बाहर निकल जायेगा। पानी स्वच्छ हो, अधिक गर्म या ठंडा न हो।

नोट :- (i) जिन साधकों को खूनी बवासीर है या अल्सर आदि किसी प्रकार की पेट की या कोई अन्य बीमारी है वे प्राकृतिक एनीमा विधि (1) और (2) प्रारम्भ में किसी प्राकृतिक चिकित्सक के देखभाल व परामर्श से ही करें अन्यथा नहीं।

(ii) सर्दियों में केवल गर्म (गुनगुना) पानी से ही एनीमा लें।

(iii) बिना एनीमा की सहायता से मल बाहर निकलना :-

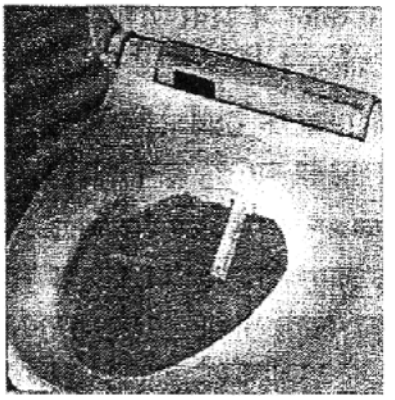

Western Style pot पर बैठ जायें। पीछे लगे जेट स्प्रे से पानी चलाकर (धार की तरह) गुदा मार्ग पर पड़ने दें। इसके साथ-साथ सीधे हाथ की मध्यमा अंगुली को आगे से गुदा के अन्दर बराबर कुछ देर तक घुमाते रहने से या छूते रहने से अन्दर का मल धीरे-धीरे बाहर आता रहता है और आँतें साफ होती रहती हैं। यदि हम सप्ताह में एक या दो बार गुदा में सरसों का तेल या तिल का तेल भी लगाते रहें तो यह क्रिया अधिक प्रभावशाली हो जाती है। इस क्रिया के अभ्यास हो जाने पर प्राकृतिक एनिमा आदि लेने की भी आवश्यकता कम हो जाती है।

ब्रह्मचर्य-जीवन का आधार (1)

ब्रह्मचर्य प्राचीन भारत का महत्वपूर्ण सन्देश है। इसकी महिमा का जितना वर्णन किया जाये, उतना कम है। **महर्षि दयानन्द ने इसकी चर्चा सत्यार्थ प्रकाश व अपने भाषणों में की है।** स्वामी विवेकानन्द जी ने भी अपने जीवन में ब्रह्मचर्य का न केवल पालन किया बल्कि समय-समय पर इसका जोरदार प्रचार-प्रसार भी अपने प्रवचनों में भारत व विदेश में किया।

आजकल भारतीय विद्यार्थियों और युवाओं की दशा बड़ी सोचनीय हो रही है। समाज का वातावरण दिन-प्रतिदिन दूषित होता जा रहा है। कामवासना व सेक्स के बढ़ते प्रभाव के कारण समाज में अनेकों अपराध बढ़ने शुरू हो गये हैं। युवाओं की मानसिकता खराब होती जा रही है। इंटरनेट, टीवी व अखबारों द्वारा हमारे विद्यार्थियों व नवयुवकों का, ब्रह्मचर्य ज्ञान के अभाव में, सर्वनाश हो रहा है। आज छोटी-छोटी उम्र के बच्चे वासना सम्बन्धी क्राइम करते देखे जा रहे हैं और जेलों में सजा काट रहे हैं। इसका मुख्य कारण अभिभावकों द्वारा स्वयं पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करना, बच्चों को ब्रह्मचर्य सम्बन्धी ज्ञान समय पर न देना व बच्चों की सही तरीके से देखरेख न करना है। ब्रह्मचर्य-पालन द्वारा इन दुर्गुणों से मुक्ति पायी जा सकती है।

यह लेख माता-पिताओं, अभिभावकों, विद्यार्थियों एवं युवकों को उनके दायित्व के प्रति जागरूक करेंगे, ऐसी कामना है। राष्ट्र धर्म, जाति, स्वास्थ्य, समाज, ज्ञान-विज्ञान व ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा हेतु ब्रह्मचारी बनना व ब्रह्मचर्य के सन्देश का भरपूर प्रचार प्रसार करना सभी भारतीयों का परम धर्म है ताकि हमारी भावी पीढ़ी संस्कारित, स्वस्थ, बुद्धिमान व देश व समाज की उन्नति में पूर्ण रूप से सहयोग देकर विश्व गुरु बन सके।

ब्रह्मचर्य जीवन का आधार है। ब्रह्मचर्य से शारीरिक, आत्मिक और बौद्धिक बल को प्राप्त किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य क्रमशः.....

ब्रह्मचर्य-जीवन का आधार (2)

के पालन के बिना मनुष्य पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं रह सकता। समाज में दुष्कर्म कम नहीं हो सकते। अच्छे स्वास्थ्य के अभाव में जीवन में सफलता पाना और ईश्वर की अनुभूति व साक्षात्कार करना भी असंभव है। अत: जीवन को सफल बनाने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना हम सबके हित में है। आज समाज में एक रुढ़िवादी भ्रान्ति है कि यदि माता-पिता व गुरु बच्चों एवं युवकों के सामने ब्रह्मचर्य सम्बन्धी विषयों का वर्णन करेंगे तो वे न जानते हुए भी हस्तमैथुन आदि जैसे दुर्गुणों को जान लेंगे। परन्तु यह धारणा बिल्कुल निराधार है। यदि अभिभावक अपने बच्चों को ब्रह्मचर्य के महत्व एवं उत्पादक अंगों के बारे में नहीं बतायेंगे तो बच्चे कुसंग में पड़कर अथवा इंटरनेट के माध्यम से अवश्य ही गलत ज्ञान प्राप्त कर लेंगे और वीर्यनाश व व्यभिचार आदि दुर्गुणों को सीखने की संभावना हो सकती है। यदि माता-पिता अपने बच्चों को ब्रह्मचर्य की नैतिक शिक्षा देंगे तो उनके बच्चे उनको राष्ट्र और गौरव का अहसास करवायेंगे क्योंकि ब्रह्मचर्य योग में बहुत बड़ी शक्ति है जो और किसी में नहीं है। अभी तक संसार में कोई भी दवा ऐसी नहीं बनी जो वीर्यहीन व्यक्ति को वीर्यवान बना सके। **इसलिए प्रत्येक माता-पिता, अध्यापक एवं अभिभावक का परम कर्तव्य है कि अपने बच्चों, शिष्यों और युवाओं को ब्रह्मचर्य के बारे में सही ज्ञान ठीक समय पर देवें।**

संसार में तीन मुख्य बल हैं - शरीर बल, ज्ञान बल और आत्म बल। बाकी सभी बल इन्हीं तीन बलों के अंतर्गत आते हैं। स्वस्थ्य शरीर के बिना ज्ञान बल और आत्मबल प्राप्त करना बहुत ही कठिन है, लगभग असंभव है। अत: प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि अपने हित में व्यायाम, प्राणायाम एवं ब्रह्मचर्य द्वारा अपने शरीर को निरोग रखे। शरीर निरोग होने पर मुनष्य जीवन का आनन्द पूर्ण रूप से ले सकता है। उसकी आत्मा भी निर्मल, शक्तिशाली एवं सामर्थ्यवान बन कर ईश्वर साक्षात्कार कर सकती है जोकि जीवन का मुख्य लक्ष्य है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ

आजकल ब्रह्मचर्य का अर्थ बहुत ही सीमित रूप से लिया जाता है। ब्रह्मचर्य से तात्पर्य केवल जननेन्द्रिय पर संयम रखना समझा जाता है। अधिकांश व्यक्ति समझते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन केवल ब्रह्मचर्य आश्रम (विद्यार्थी जीवन) के समय ही होना चाहिये, गृहस्थ आश्रम में नहीं। यह एक संकुचित विचारधारा है। वेदानुसार पूर्णतया सही नहीं है।

ब्रह्मचर्य बहुत प्राचीन विषय है। वेदों में कई मन्त्र ऐसे हैं जिसमें ब्रह्मचर्य पर पूर्ण रूप से चर्चा की गई है। वेदों के अतिरिक्त पुराण, रामायण, महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थों में भी ब्रह्मचर्य के बारे में कथाएं, पालन की शिक्षाओं आदि का वर्णन मिलता है। महर्षि पतंजलि ने भी योग दर्शन में ब्रह्मचर्य को यम-नियम में सम्मिलित करके इसकी महिमा को बढ़ाया है, उनके अनुसार जो मनुष्य मन, वचन एवं कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह अवश्य ही स्वस्थ व आनन्दमय जीवन व्यतीत करता हुआ ईश्वर साक्षात्कार/अनुभूति का अधिकारी बन जाता है।

आर्यसमाज के संस्थापक, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में शिक्षा विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए सलाह दी है कि प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चों को ठीक समय पर ब्रह्मचर्य के महत्व से अवगत करायें जिससे बालक समझ सके कि वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख है।

वेदों के अनुसार ब्रह्मचर्य का अर्थ है-ईश्वर चिन्तन करना, वेद अध्ययन करना, ज्ञान अर्जित करना एवं वीर्य-रक्षण करना। अगले विचारों में मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य के लाभ, पालन न करने से हानियाँ, वीर्य का महत्व, उत्पत्ति, वीर्य रक्षा के लाभ, वीर्य नाश से हानियाँ, वीर्य रक्षा के उपाय आदि विषयों पर चर्चा सूक्ष्म रूप में की जायेगी।

ब्रह्मचर्य के प्रकार

ऋषि याज्ञवल्क्य के अनुसार ब्रह्मचर्य निम्नलिखित तीन प्रकार का होता है -

(1) **शारीरिक ब्रह्मचर्य** - आलिंगन, चुंबन, हाव भाव एवं उपस्थेन्द्रिय के संचालन से पृथक रहना।

(2) **मानसिक ब्रह्मचर्य** - वासना विषय का चिन्तन व संभोग आदि भावनाओं को पूर्णतया त्याग देना।

(3) **वाचिक ब्रह्मचर्य** - प्रेम सम्बन्धी चर्चा, वासना उत्पन्न करने वाले दृश्य, इंटरनेट पर वासनायुक्त तस्वीरें एवं टी.वी. पर प्रेम सम्बन्धी सीरियल देखना एवं इसी प्रकृति के नावल, पुस्तकें आदि पढ़ना-इन सबका बिल्कुल त्याग कर देना।

आजकल अधिकतर पुरुष एवं स्त्रियां वेदानुसार शारीरिक ब्रह्मचर्य का पालन करने में भी असमर्थ होते हैं। यदि कायिक ब्रह्मचर्य का पालन कर भी लें तो भी मानसिक और वाचिक ब्रह्मचर्य के उल्लंघन को पाप नहीं समझते। फलस्वरूप ऐसे व्यक्ति कुछ ही समय में शारीरिक ब्रह्मचर्य का भी पालन करना छोड़ देते हैं। वास्तव में मानसिक एवं वाचिक रूप में ब्रह्मचर्य का उल्लंघन करने से शारीरिक ब्रह्मचर्य का पालन करना भी असंभव है क्योंकि मन, वचन एवं कर्म का आपस में गहरा सम्बन्ध है। अत: मन, वचन और कर्म के द्वारा ब्रह्मचर्य का एक साथ पालन करना ही सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले पुरुष एवं स्त्रियाँ दो प्रकार के होते हैं -

(1) **नैष्ठिक ब्रह्मचारी** - ये जन्म से मृत्यु तक ब्रह्मचय का पालन करते हैं। उदाहरण के लिए महावीर हनुमान, भीष्म पितामह, महर्षि दयानन्द आदि। (2) **उपकुर्वाणक ब्रह्मचारी**-ये विवाह करते हैं, संतान उत्पन्न करते हैं, इनके संभोग का उद्देश्य कामवासना न होकर संस्कारित व शक्तिशाली संतान उत्पन्न करना है। ये ऋतुकालगामी होते हैं। अपने विवाहित जीवन के उद्देश्य से सन्तुष्ट रहते हैं। पर स्त्री-पुरुष में भूल कर भी राग नहीं रखते। हमारी प्राचीन ग्रन्थ उपकुर्वाणक ब्रह्मचारियों के उदाहरणों से भरे पड़े हैं।

ब्रह्मचर्य पालन के लाभ

शारीरिक लाभ

1. शारीरिक स्वास्थ्य सदैव अच्छा बना रहता है।
2. शरीर तेजोमय व आरोग्य बन जाता है।
3. शारीरिक बल की प्राप्ति होती है।
4. शरीर दीर्घायु को प्राप्त करता है।
5. मुख मण्डल पर अलौकिक आभा होती है।
6. उत्तम व संस्कारित सन्तान प्राप्त होती है।
7. समस्त इन्द्रिय समूह स्वस्थ एवं संयम में रहता है।
8. शरीर के त्यागने पर सद्गति मिलती है।
9. सहन शक्ति, उत्साह व साहस में वृद्धि होती है।
10. गृहस्थी को गर्भ निरोधक साधनों व कण्डोम आदि की आवश्यकता ही नहीं होती है।
11. समाज व राष्ट्र जीवन सुदृढ़ बनता है।

बौद्धिक लाभ

1. ब्रह्मचर्य सदाचार (सज्जनों का आचरण) का आधार है।
2. ब्रह्मचर्य से समस्त दोषों का नाश होता है।
3. यह हमारी श्रेष्ठता एवं सम्पूर्ण उन्नति का साधन है।
4. वेद-अध्ययन एवं ईश्वर-चिन्तन में मन लगता है।
5. जीवन के उत्थान एवं सफलता में सहायक है।
6. बौद्धिक बल की प्राप्ति होती है।
7. स्मरण शक्ति तेज व स्थायी बनी रहती है।
8. मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की दिशा में पर्याप्त उन्नति करता हुआ सद्गति को प्राप्त करता है।

ब्रह्मचर्य पालन के लाभ

आत्मिक/आध्यात्मिक लाभ

1. ब्रह्मचर्य ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की आधारशिला है।
2. मानसिक शक्तियों के विकास में सहायक है।
3. आत्मिक बल बना रहता है। आत्मिक शक्तियाँ विकसित होती हैं।
4. जीवन आनन्दमय बन जाता है।
5. ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना में मन व हृदय लग जाता है।
6. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष स्वयं सिद्ध होने लगते हैं।
7. आत्म ज्ञान एवं परमानन्द की प्राप्ति होती है।

सामाजिक लाभ

1. समाज में पाप, विशेषकर वासना सम्बन्धी कम होते हैं।
2. समाज में आर्थिक उन्नति (सभी वर्गों में) एक समान होने की प्रवृत्ति बनती जाती है।
3. यम-नियम पालन करने की प्रेरणा मिलती है।
4. गरीब-अमीर में आर्थिक असमानता कम होती जाती है।
5. समाज के सभी क्षेत्रों में पर्याप्त उन्नति होने की प्रक्रिया को बढ़ावा मिलता है।
6. सभी जीवों के प्रति प्रेम बढ़ता जाता है।
7. सभी प्राणियों के मानव अधिकारों की रक्षा होती है।
8. महिला सशक्तिकरण में सहायक है।

ब्रह्मचर्य पालन न करने से हानियाँ

ब्रह्मचर्य का पालन न करने वाला विद्यार्थी, युवा, पुरुष एवं स्त्री सभी प्रकार के पूर्ण शारीरिक एवं अन्य लाभों से वंचित रहता है। इसमें शारीरिक स्वास्थ्य, सहन-शक्ति, उत्साह तथा साहस की धीरे-धीरे कमी होती जाती है। मानसिक शक्तियों के विकास में कमी आती जाती है। आत्मा उन्नति के मार्ग से विचलित होती जाती है।

ऋषि दयानन्द ने भी अपनी वाणी व आचरण द्वारा निर्देश करते हुये बतलाया था कि शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक ब्रह्मचर्य द्वारा ही मनुष्य-समाज की रक्षा हो सकती है। आजकल पाश्चात्य देशों के विद्वान भी ऋषि दयानन्द के उपरोक्त कथन की प्रशंसा कर रहे हैं। इससे सहमत हैं।

आजकल समाज में दुराचरण एवं वासना सम्बन्धी जो पाप एवं क्राईम सभी उम्र के पुरुष एवं स्त्रियों द्वारा देखने को मिल रहे हैं-वह ब्रह्मचर्य एवं सदाचार के नियमों की अज्ञानता और उनके पालन न करने का ही घातक परिणाम है। अत: आज की सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए गृहस्थी को ही नहीं बल्कि समाज के प्रत्येक वर्ग-विद्यार्थी, युवा एवं स्त्री को ब्रह्मचर्य का महत्व समझने व उसका पालन करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

सभी अध्यापकों, आचार्यों, माता-पिताओं एवं अभिभावकों का परम कर्तव्य है कि वे स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन के विषय पर विचार करें और अपने छात्रों एवं बच्चों को ब्रह्मचर्य का महत्व बतायें ताकि हमारे बच्चे और युवा, जोकि भारत माता की सम्पत्ति है-पूर्ण रूप से शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति कर सकें।

किशोर एवं युवा अवस्था

प्रत्येक मनुष्य की 13 से 25 वर्ष तक की अवस्था बहुत नाजुक होती है। 14 वर्ष की आयु से पहले बच्चों के शारीरिक विकास में लगभग कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता है। 15 से 18 वर्ष की आयु को किशोरावस्था एवं 18 वर्ष से 25 वर्ष की आयु को युवावस्था कहते हैं। इन दोनों अवस्थाओं में शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होना प्रारम्भ हो जाते हैं।

किशोरावस्था (15 से 18 वर्ष) में ठोड़ी एवं जननेन्द्रिय भाग में बाल आने शुरू हो जाते हैं। आवाज जोरदार होने लगती है। उत्पादक अंग वृद्धि पाकर वीर्य का सम्पादन शुरू कर देते हैं लेकिन किशोरावस्था की प्रारम्भिक अवस्था में शरीर की हड्डियाँ पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाती हैं। अत: किशोरावस्था में उत्पादक तत्व पूर्ण रूप से परिपुष्ट नहीं हो पाता है।

युवा अवस्था (18 से 25 वर्ष तक) का आरम्भ किशोरावस्था के बाद होता है। इन दोनों अवस्थाओं में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने से शारीरिक एवं मानसिक शक्ति के विकास में अत्यन्त वृद्धि होती है। इन दोनों अवस्थाओं पर भोजन, जलवायु एवं रहन-सहन के ढंग का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। अत: ये जल्दी भी आ सकती हैं और देर में भी। किशोरावस्था का समय से पूर्व आ जाना अथवा इस अवस्था में विवाह करना उचित नहीं है। इस अवस्था में काम भाव का जल्दी जग जाना भी जीवन के लिए हानिकारक है।

आजकल, आधुनिक जीवन शैली एवं टेलीविजन किशोरावस्था एवं युवा अवस्था को बहुत अधिक प्रभावित कर रहे हैं। फलस्वरूप इन अवस्थाओं के बच्चे अज्ञानतावश ब्रह्मचर्य का उल्लंघन करने की दिशा में प्रेरित हो रहे हैं।

स्वभाविक एवं अस्वभाविक जीवन

काम वासना के उदय के समय को ध्यान में रखते हुए जीवन को दो भागों में बांटा जा सकता है :-

(1) स्वाभाविक जीवन - आज समाज में स्वाभाविक जीवन नाम मात्र के लिए दीखता है। यह केवल एक कल्पना का विषय बन गया है। ''स्वाभाविक जीवन'' व्यतीत करने का अर्थ है सदाचार का पालन करना, सात्विक भोजन करना, नियमित समय पर सोना व प्रात:काल समय पर उठना, नियमानुसार प्रतिदिन व्यायाम व प्राणायाम करना, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना, टी.वी., इंटरनेट एवं मोबाइल का प्रयोग उचित रूप में कम से कम करना।

स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने वाले युवक एवं युवतियों को किशोर अवस्था तथा युवावस्था कभी अशान्त नहीं करती। उनके सामने इन्द्रिय निग्रह की समस्या कभी पैदा ही नहीं होती। परन्तु आज के इस दूषित सामाजिक वातावरण में मनुष्य की स्वाभाविक जीवन शैली पर विचार प्रकट करना भी बड़ा जोखिम का काम है। अत: आजकल ''अस्वाभाविक जीवन'' जिसमें अधिकतर मनुष्य ब्रह्मचर्य के मूलभूत नियमों का उल्लंघन करते रहते हैं, को समझने की आवश्यकता है। **(2) अस्वाभाविक जीवन :-** आज हमारे समाज में अधिकतर स्त्री-पुरुष अप्राकृतिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। चारों तरफ इन्द्रिय-निग्रह का अत्यन्त अभाव देखने को मिल रहा है। संयम नाम मात्र को भी नहीं रहा।

अस्वाभाविक जीवन में ब्रह्मचर्य दो तरह से टूटता है :-**(क) जान-बूझ कर संयम तोड़ना** - इसमें मुख्य रूप से आत्म व्यभिचार (हस्तमैथुन आदि), पत्नी व्यभिचार तथा वैश्या-व्यभिचार आते हैं। **(ख) बिना जाने संयम टूट जाना** - इसमें मुख्य रूप से स्वप्नदोष आता है। इसके अतिरिक्त इसमें वासना, इन्द्रिय शक्ति व प्रजनन कार्य, मानसिक व वाचिक ब्रह्मचर्य का उल्लंघन भी सम्मिलित है जो अधिक हानिकारक है।

वासना, इन्द्रिय शक्ति व प्रजनन कार्य (1)

किसी भी इन्द्रिय के प्रयोग में-मुख्य रूप से रसास्वादन एवं यौन-कार्य में अधिकता बरतना-की आदत को वासना कहते हैं। वेद में वासना की बहुत ही अधिक निन्दा की है व इसे आत्मघाती बताया है।

आग और बिजली की उपयोगिता सभी को मालूम है। इसी प्रकार ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों की उपयोगिता है। हमारी सभी गतिविधियाँ इन्हीं के सहारे चलती हैं। आग और बिजली की तरह ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों की क्षमता भी असाधारण है। जिस प्रकार आग व बिजली में थोड़ी सी असावधानी बरतने से जोखिम हो सकती है। उसी प्रकार इन्द्रियों के दुरुपयोग से मनुष्य को शारीरिक व आध्यात्मिक हानि हो सकती है। अत: इनका योजनाबद्ध अच्छे प्रयोजनों के लिए उपयोग करना ही लाभदायक है अन्यथा अनर्थ होना आवश्यक है।

ईश्वर ने इन्द्रियों में दो विशेषतायें दी हैं-जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों का करना एवं जीवन यापन के लिए सीमा में रहकर मनोरंजन का लाभ उठाना। यह दोनों कार्य सीमा एवं संयम में रहकर ही शोभनीय एवं लाभदायक होते हैं। इन्द्रियों द्वारा उपयोगी कार्यों में बहुत अधिक कार्य करना भी उनकी कार्यक्षमता को धीरे-धीरे नष्ट या कम कर देता है।

इन्द्रियों में, ब्रह्मचर्य को ध्यान में रखते हुए, स्वादेन्द्रिय व जननेन्द्रिय प्रमुख हैं। चटोरेपन की वासना स्वास्थ्य को धीरे-धीरे नष्ट करके मनुष्य की अकाल मृत्यु का कारण बनती है। जो इस वासना में लिप्त हो जाते हैं, वे सदैव कष्ट उठाते हैं।

वासना, इन्द्रिय शक्ति व प्रजनन कार्य (2)

इसी प्रकार जननेन्द्रिय का मुख्य कार्य मूत्र त्याग व गौण कार्य प्रजनन है। ईश्वर की इच्छा है कि हर जीवधारी का वंश, कर्मानुसार चलता रहे। इसलिए मूत्रेन्द्रिय को ही कभी-कभी प्रजनन कार्य में प्रयोग करने के लिए बनाया गया है।

प्रजनन में पति व पत्नी दोनों को ही असाधारण दायित्व उठाना पड़ता है। जोखिम उठाना पड़ता है। प्रजनन कार्य को रुचि पूर्ण बनाने के लिए परम पिता परमात्मा ने रति क्रिया में एक उन्मादी रस जोड़ दिया है जिससे प्रेरित होकर प्राणी उसमें आकर्षित होता है और प्रजनन क्रिया को पूर्ण करता है। आजकल अधिकतर लोग प्रजनन का लक्ष्य भूलकर वासना के लिए इस कर्मेन्द्रिय शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं। जिह्वा के स्वाद की तरह यौन कार्य में भी अति बरतते हैं व जीवन शक्ति के भण्डार को धीरे-धीरे नष्ट करते जा रहे हैं। लेकिन मनुष्य को याद रखना चाहिए कि प्रकृति की अदालत ऐसे व्यक्ति को कभी माफ नहीं करती है, कठोर दण्ड देती है। स्वादेन्द्रिय व जननेन्द्रियों की वासना का उपरोक्त वर्णन/पहलू अन्य इन्दियों पर भी समान रूप से लागू होता है। अत: इस अनर्थ से बचना ही मनुष्य के हित में है।

Death is hastened by letting out semen from the body;
Life is saved and prolonged by preserving it.
Shiv Samhita

The presence of brahmacharya in the mind, the body and the speech results in wonderful power of mind, wonderful power of body and wonderful power of the speech.
Dadasri

शरीर के उत्पादक अंग, उनका उद्देश्य एवं उपयोगिता (1)

हमारे शरीर में जिस प्रकार हृदय, पेट, आँख, कान आदि हैं। उसी प्रकार से उत्पादक अंग भी हैं। हमारे सभी शारीरिक अंग उपयोगी हैं, पवित्र हैं। प्रत्येक अंग के बारे में ठीक-ठीक ज्ञान मनुष्यों को होना चाहिए, उनका उद्देश्य के बारे में ठीक-ठीक जानकारी का होना भी अति आवश्यक है ताकि उनका दुरुपयोग न हो सके। अत: शरीर के किसी भी अंग की चर्चा करना-उत्पादक अंग अथवा अन्य अंग-उचित है। उत्पादक अंगों के बारे में ठीक समय पर बच्चों के साथ चर्चा करना, उनके हित में है अन्यथा वे कहीं न कहीं से उत्पादक अंगों के सम्बन्ध में ज्ञान-ठीक अथव गलत-पा ही लेते हैं।

पुरुष के उत्पादक अंग शरीर के बाहर स्थित होते हैं जबकि स्त्री के उत्पादक-संस्थान के अंग शरीर के भीतर पाये जाते हैं। इस लेख में केवल पुरुष के उत्पादक संस्थान का ब्रह्मचर्य के दृष्टिकोण से प्रारम्भिक व सामान्य ज्ञान का वर्णन सूक्ष्म में किया जायेगा।

शिशन - पुरुष की जननेन्द्रिय को शिशन कहते हैं। इसका पहला कार्य मूत्र त्याग करना व दूसरा कार्य वीर्य का परिवक्व अवस्था में, सन्तान उत्पत्ति करना है। परिवक्वावस्था से पूर्व बुरे विचार अथवा कुचेष्ठाओं से यह अंग शिथिल होने लगता है, कमजोर होने लगता है। इस अंग में अनेक रक्त वाहिनी प्रणालिकायें रहती है। **काम भाव के विचारों से शरीर का खून इन प्रणालिकाओं की तरफ जाने लगता है और जननेन्द्रिय उत्तेजित होने लगती हैं। यह खून कुछ देर जननेन्द्रिय में रूककर शक्ति रहित हो जाता है। ऐसी भारतीय आयुर्वेद में मान्यता है। उत्तेजना खत्म होने पर यह गन्दा खून पुन: शरीर में गति करने लगता है और शरीर के खून की शुद्धता को प्रभावित करता हुआ स्वास्थ्य पर बुरा असर डालता है।**

शरीर के उत्पादक अंग, उनका उद्देश्य एवं उपयोगिता (2)

मुण्डाग्र चर्म :- शिशन का अगला भाग पतली त्वचा से ढका होता है। इस बढ़ी हुई त्वया को मुण्डाग्र चर्म कहते हैं। मुण्डाग्र चर्म के अन्त: पृष्ठ पर छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें से एक खास प्रकार का स्राव निकलता है। इस त्वचा को सप्ताह में एक या दो बार (स्नान करते समय) मुण्ड पर से हटाकर स्राव को धो डालना चाहिये अन्यथा यह इकट्ठा होकर उत्तेजना व खुजली पैदा करता है। मुण्डाग्र चर्म में शरीर की अनेक शिरायें पहुंचती हैं। अत: इसको नियमित रूप से धार्मिक भावना के साथ साफ रखना व स्नान कराना सम्पूर्ण मस्तिष्क में शीतलता पहुंचाता है और मनुष्य अनुचित उत्तेजना से बच जाता है।

मुण्ड :- यह मूत्र-प्रणाली का मुख है। इसमें से भी एक प्रकार का स्राव बहुत धीरे-धीरे निकलता रहता है। मुण्ड की त्वचा व मुण्ड बहुत नाजुक होता है। अत: धोने के सिवा इसे कभी भी छूना नहीं चाहिये। मुण्ड को उत्तेजना से बचाने के लिए सदैव ढीले वस्त्र पहनने चाहिए।

मूत्र-प्रणाली :- इसके दो कार्य हैं :-

(1) मूत्राशय में स्थित मूत्र को बाहर निकालना और

(2) शुक्राशय में स्थित शुक्र को बाहर निकालना।

यह मूत्र-प्रणाली एक समय में एक ही कार्य करती है।

शुक्राशय :- यह कई कुण्डलियों तथा कक्षों का बना हुआ है। यह गुदा एवं मूत्राशय के बीच में स्थित है। अण्डकोषों से संचित वीर्य इसमें संचित होता है। गुदा और मूत्राशय जब भरे हुए होते हैं, उस स्थिति में शुक्राशय पर अनुचित दबाव पड़ता है। इससे उत्तेजना होती है और वीर्य स्खलित हो सकता है। अन्यथा यह वीर्य या तो शरीर में खप जाता है या मूत्र प्रणाली से संभोग के समय बाहर निकल कर सन्तान उत्पत्ति में काम आता है।

शरीर के उत्पादक अंग, उनका उद्देश्य एवं उपयोगिता (3)

अण्डकोश :- अण्डकोश अण्डों की सुरक्षा के लिए बनी हुई थैली का नाम है। इसमें एक अण्ड दाँई और दूसरा अण्ड बाँई ओर रहता है। इस थैली में दोनों अण्ड अलग-अलग विभाग में रहते हैं। किशोरावस्था में घुंघराले बाल इस थैली की त्वचा पर निकल आते हैं। इस त्वचा व अण्डकोश को समय-समय पर साफ करना चाहिए ताकि खुजली न हो सके।

अण्ड :- दांया अण्ड बायें अण्ड से कुछ बड़ा व भारी होता है। इनमें ही वीर्य कीट बनते हैं। यह बहुत कोमल होते हैं। अण्डकोश में थोड़ी सी भी चोट लगने पर स्वास्थ्य को भारी हानि हो सकती है। कभी-कभी मनुष्य की मृत्यु भी हो जाती है।

पुरुष के अण्ड की तरह स्त्री में 'ओवरी' होती है जिसमें रज:कण प्रति मास मासिक धर्म के बाद निकलता है। स्त्री की ओवरी शरीर के भीतर होती है।

जीवन

मनुष्य का जीवन एक प्रकार का खेल है और मनुष्य इस खेल का मुख्य खिलाड़ी है। यह खेल मनुष्य को हर हाल में खेलना पड़ता है। इस खेल का नाम है-''विचारों का खेल''। इस खेल में मनुष्य को दुश्मनों से बचकर रहना होता है और इसमें मुनष्य की सहायता करते हैं

''वैदिक विचार''

(मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र)

शुक्रकीट एवं वीर्य (1)

शुक्रकीट :- इसे अंग्रेजी में 'स्पर्मेटोजोआ'' कहते हैं। उत्तेजना के समय हजारों शुक्रकीट अण्डकोशों से निकलकर शुक्रवाहिनी से शुक्र-सारिणी तक सभी अंगों को भर देते हैं और एक द्रव्य में तैरते रहते हैं। जिस पुरुष के वीर्य में यह जीवाणु नहीं होते, वह नपुंसक कहलाता है। यह शुक्रकीट तथा ये द्रव्य मिलकर वीर्य कहाते हैं। संभोग के समय शुक्रकीट स्त्री के शरीर में प्रवेश करके रज:कण की खोज में इधर-उधर घूमने लगते हैं और रज:कण मिलते ही कोई न कोई शुक्र कीट उससे संयुक्त हो जाता है और गर्भ ठहर जाता है।

पुरुष 25 वर्ष और स्त्री 16 वर्ष से पहले सन्तान उत्पत्ति के लिए परिवक्व नहीं होते। ऐसी वेद में मान्यता है।

वीर्य :- इसको शुक्र, तेज, रेतस, बीज, इन्द्रिय या सीमन भी कहते हैं। मनुष्य के शरीर का तत्त्व भाग वीर्य है। भोजन के पचने पर रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य उत्पन्न होता है। यह शरीर का जीवन और आधार है। स्त्री के इस सातवें सार पदार्थ को ''रज'' कहते हैं। दोनों में भिन्नता है। वीर्य चिकना और सफेद होता है। ''रज'' लाख की तरह लाल होता है। वीर्य तथा रज बनाने में शरीर को बहुत अधिक मेहनत करनी पड़ती है। थोड़े से वीर्य को बनाने के लिए खून की पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता होती है। अत: वीर्य को नष्ट करने का अर्थ है अत्याधिक रक्त का नाश करना। आयुर्वेद के इस सिद्धान्त से अब पाश्चात्य के वैज्ञानिक भी सहमत हैं।

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों का मानना है कि 40 औंस रुधिर से एक औंस वीर्य बनता है। एक बार में मनुष्य के संभोग में कम से कम डेढ़ तोला वीर्य बाहर निकल जाता है जोकि एक मास में बनता है। एक मास के पश्चात् जो वीर्य या रज बनता है, इकट्ठा होता है। वह अत्यन्त जीवनी-शक्ति से भरा हुआ होता है। क्रमश: .....

शुक्रकीट एवं वीर्य (2)

ऐसे वीर्य या रज की, यदि गर्भाधान के लिए आवश्यकता न हो तो शरीर से पृथक न करना ही स्वास्थ्य के लिए उचित है। इससे मनुष्य दीर्घायु होता है।

वीर्य की उपधातु को ओज कहते हैं। यह स्वतन्त्र एवं सर्वश्रेष्ठ तत्व है। यह वीर्य की शक्ति के रूप में सारे शरीर में रहता है। यह चिकना, शीतल, स्थिर व उज्जवल होता है। यही शरीर में तेज व बल को बढ़ाता है। यह वीर्य की अधिकता से बढ़ता है और न्यूनता से घटता है। वीर्य की रक्षा करने से ओज का नाश नहीं होता। ऐसी मान्यता है कि जब तक शरीर में वीर्य रहता है तब तक शरीर शक्तिशाली एवं स्वस्थ रहता है। मृत्यु उपरान्त वीर्य पूर्ण रूप से तुरन्त समाप्त हो जाता है।

अन्तः स्राव :- अण्डकोशों में से दो प्रकार का रस उत्पन्न होता है। (1) भीतरी रस। इसको ''इन्टरनल सिक्रीशन'', अन्तःस्राव या हारमोन कहते हैं। अन्तःस्राव हर समय अण्डकोशों से होता रहता है और शरीर में अन्दर ही अन्दर खपता रहता है। यह आँखों को तेज, मुख को आकर्षक व शरीर के सभी अंगों को सुडौल बनाता है। किशोरावस्था में हर एक के चेहरे पर सलोनापन होता है। यह अन्तःस्राव के शरीर में खपने के कारण ही होता है। आयुर्वेद में इस अन्तःस्राव को ही ओज कहते हैं।

बहिःस्राव :- अण्डकोशों से निकलने वाले दूसरे रस को बाहरी रस ''एक्सटरनल सिक्रीशन'' या बहिःस्राव कहते हैं। यह पुरुष जीवन में निरन्तर नहीं होता। साधारणतः यह प्रक्रिया 18-20 की आयु से शुरू होकर 60 वर्ष की आयु तक रहती है। स्त्री के शरीर में यह प्रक्रिया 12-15 की आयु में शुरू होकर 45-50 वर्ष की अवस्था तक रहती है।

भीतर व बाहरी-किसी भी वीर्य शक्ति का ह्रास हमारे स्वास्थ व बुद्धि के लिए अत्यन्त हानिकारक ही होता है।

कई भारतीय व पाश्चात्य के विद्वानों का मत है कि वीर्य का नाश मस्तिष्क का नाश है क्योंकि उनके मत में, वीर्य तथा मस्तिष्क क्रमश...

शुक्रकीट एवं वीर्य (3)

दोनों को बनाने वाले रसायनिक पदार्थ एक ही हैं। मस्तिष्क तथा वीर्य नाश में कोई खास सम्बन्ध अवश्य है और वीर्य के नाश का दिमाग पर असर अवश्य पड़ता है। यह मत उचित ही प्रतीत होता है।

युवा अवस्था आने पर बहिःस्राव भी धीरे-धीरे निरन्तर होने लगता है और थोड़ी-थोड़ी मात्रा में वीर्य कोश में संचित होने लगता है। वहाँ से यह शरीर में खपता रहता है अन्यथा वीर्य कोश के भर जाने पर इसका निकास तीन प्रकार से होता है :-

(1) यह अपनी इच्छा से निकाला जा सकता है। संतान उत्पत्ति के लिए इसका प्रयोग दोषयुक्त नहीं कहा जाता। अन्य किसी भी तरीके से या रूप में इसका नाश करना शारीरिक व मानसिक शक्ति के लिए हानिकारक है।

(2) गुदा और मूत्राशय के भरा होने पर शुक्राशय पर अधिक जोर पड़ता है। जिसके कारण उत्तेजना होने पर यह स्वयं बाहर निकल जाता है। यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इससे बचने के लिए पेट सदा साफ रखना, कब्ज न होने देना और शौच के समय जोर नहीं लगाना चाहिए।

(3) सोते हुये, मन में गन्दा स्वप्न आने पर, वीर्यपात (स्वप्न दोष) हो जाता है। यह भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

Veerya is all power,
Veerya is all money.
Veerya is the essence of life,
thought and intellegence

Swami Chidananda

वीर्य रक्षण के लाभ

(1) शरीर में बल, तेज, ओज और उत्साह की वृद्धि होती है।

(2) शरीर निरोग रहता है अथवा रोगों से लड़ने की शक्ति मिलती है। वासना रूपी कुरोगों का नाश होता है।

(3) आयु लम्बी, शरीर सुन्दर व स्वस्थ, बुद्धि तीव्र व पराक्रमी होती है।

(4) सन्तान निरोग, आयुष्मान और बलवान होती है।

(5) स्त्री-सुख व पारिवारिक सद्व्यवहार बढ़ता है।

(6) चित्त प्रसन्न रहता है, जीवन में पूर्ण सफलता मिलती है।

(7) स्मरण शक्ति व आयु बढ़ती है।

(8) इससे शान्ति और आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इससे अन्त:करण पवित्र और शान्त रहता है।

(9) मनुष्य दिव्य ज्ञान व सच्चे अनुभव का अधिकारी बनता है।

(10) देश, धर्म और समाज की सेवा के लिए वीर्य रक्षण अति उपयोगी है।

Practice of Brahmcharya gives good health,

inner strenght, peace of mind

and long life.

- Swami Shivananda

वीर्य नाश से हानियाँ

(1) मन मलीन, शरीर हीन और आत्मा अनुत्साही बन जाता है।
(2) कुछ समय बाद जोड़ों और रीढ़ की हड्डी में दर्द होने लगता है।
(3) रात को नींद आने में परेशानी शुरू होने लगती है।
(4) पाकस्थली की उष्णता धीरे-धीरे कम होती जाती है और फलस्वरूप अन्न/भोजन नहीं पचता।
(5) मस्तिष्क व स्नायु-मण्डल पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
(6) मस्तिष्क खोखला होने लगता है। स्मृति और बुद्धि कम होने लगती है।
(7) धीरे-धीरे मानसिक व शारीरिक रोग घेरने लगते हैं।
(8) हृदय पर, वीर्य निकलते समय, धक्का लगता है जिससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। सन्तान निर्बल उत्पन्न होती है।
(9) स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और कार्य करने को जी नहीं करता है।
(10) बुढ़ापा जल्दी आने लगता है। बार-बार वीर्य को शरीर से बाहर निकाल देने से मनुष्य का शारीरिक विकास और सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। मनुष्य नपुंसक तक हो सकता है।
(11) आत्मिक शान्ति, आनन्द, साहस, धैर्य और वीरत्व धीरे-धीरे खत्म होने लगता है।
(12) अन्तरात्मा का बल धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है।
(13) आत्म विश्वास खत्म होने लगता है। जीवन निराशात्मक होने लगता है।
(14) धैर्य और उत्साह समाप्त होने लगता है।
(15) अन्तःकरण पवित्र और दुर्बल होता जाता है।
(16) ईश्वर भक्ति व ध्यान में सफलता नहीं मिलती। फलस्वरूप ईश्वर साक्षात्कार/अनुभूति का अधिकारी नहीं रहता है।

वीर्य नाश से बचने के उपाय (1)

(1) भोजन शुद्ध तथा सात्विक लेना चाहिए।

(2) मिर्च, मसाले, मिठाई, खटाई का प्रयोग कम किया जाना चाहिए।

(3) चाय, कॉफी, पान, तम्बाकू, सिगरेट, शराब आदि नशीले पदार्थों का प्रयोग पूर्णतया: बन्द कर देना चाहिए।

(4) जल्दी सोना, जल्दी उठना, नियमित रूप से शौच जाना, पेट साफ रखना, व्यायाम, योग, आसन व प्राणायाम आदि क्रियायें नित्य समय पर प्रतिदिन करनी चाहिए।

(5) गन्दे उपन्यास न पढ़ना और प्रेम सम्बन्धी फिल्में, पाश्चात्य-फिल्में, टी.वी. सीरियल व नाच आदि न देखने चाहिए।

(6) स्वाध्याय करना व सत्संग सुनना जीवन का भाग बनायें।

(7) इन्द्रिय-स्पर्श बेमतलब न करना चाहिये।

(8) जननेन्द्रिय को अनावश्यक छूना या इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

(9) इसकी सफाई नियमानुसार एक धार्मिक कार्य व शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से करनी चाहिए।

(10) जननेन्द्रिय को ईश्वर द्वारा दी गई उत्पादक-शक्ति का चिन्ह मात्र मानना चाहिए।

(11) ज्ञान की साधन - पांच इन्द्रियों-आंख-(रूप), कान (शब्द), नाक (गन्ध), त्वचा (स्पर्श) एवं जिह्वा (रस) को वेदों में ईश्वर द्वारा बताये गये उद्देश्य से विचलित

क्रमश: .....

वीर्य नाश से बचने के उपाय (2)

ईश्वर द्वारा प्रदान की गई इन इन्द्रियों का सही प्रयोग करें-दुरुपयोग नहीं।

नहीं होने देना चाहिए। इनमें से प्रत्येक इन्द्री को वश व संयम में रखना चाहिये। मन के विचलित होने पर एवं मौका मिलने पर रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श-सभी द्वारा मनुष्य का संयम टूटता है। इसलिए खाली नहीं बैठना चाहिए और ऐसे गलत मौकों से बचना चाहिए।

(12) इन्द्रियों का दुरुपयोग न करने का संकल्प प्रतिदिन प्रार्थना के समय करें। इस संकल्प शक्ति को दृढ़ बनाने का निरन्तर अभ्यास करें।

(13) एकान्त में खाली बैठना एवं बुरी संगत छोड़ दें।

(14) ठालीपन, कुत्सित संकल्प तथा चिन्ता-यह तीनों मानसिक रोग हैं। सदैव अच्छे कार्यों में व्यस्त रहें ताकि ये आप की मानसिक शक्ति को हानि न पहुंचा सकें।

Teach the boys the system of Brahamcharya - Swami Vivekanand

Merried people should understand the true function of marriage, and they should not violate brahmacharya except with a view of progency. - Mahatma Gandhi

काम विकारों को रोकने के उपाय

(1) ब्रह्ममुहूर्त में जागने से मन की सद्वृत्तियाँ जागृत होती हैं। काम विचार नहीं उठते।

(2) प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास व रोज ब्रह्मचर्य पालन करने का संकल्प लेने से हृदय व मस्तिष्क में काम विकार पर संयम रहता है।

(3) उचित योगाभ्यास निरन्तर करने से वीर्य नष्ट नहीं होता व शरीर में धीरे-धीरे खपता रहता है। दैनिक व्यायाम से भी इन्द्रियों के दमन की शक्ति मिलती है।

(4) वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करने से और वैदिक सत्संग में भाग लेने से मन और मस्तिष्क को शक्ति मिलती है। काम विकार नहीं उठते हैं।

(5) कोपीन (लंगोट) धारण करने से मन और इन्द्रियों पर अधिकार हो जाता है।

जिस समय मन में काम वासना के विचार उठने लगें तब निम्नलिखित में से एक या दो क्रियायें करें -

(1) शीतल जल से सिर को धोएं या एक या दो गिलास ठंडा जल तुरन्त पियें।

(2) ठंडे जल से स्नान भी कर सकते हैं।

(3) कोई खट्टा फल खायें।

(4) दस मिनट तक लम्बा गहरा धीमा श्वास प्रश्वास (मौसम के अनुसार अधिक/कम) लें और किसी भी कार्य में व्यस्त हो जायें।

(5) कोई धार्मिक या वैदिक ग्रन्थ पढ़ना शुरू कर दें।

(6) लम्बा, गहरा धीमा श्वास लेकर, छोड़ते हुए मन ही मन ओ3म् या गायत्री मन्त्र का उच्चारण करें।

(7) यदि प्रात:काल या सायंकाल है तो ''वैदिक सन्ध्या का पाठ लेखक द्वारा लिखित पुस्तक 'वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि'' के अनुसार करें। जो भी उपाय अच्छे लगें, अवश्य करें। निश्चय ही काम विचार से मुक्ति मिल जाती है।

मैथुन की परिभाषा व इसके आठ अंग/लक्षण

वीर्य को व्यर्थ नाश करने की क्रिया को ''मैथुन'' कहते हैं। मैथुन क्रिया में प्राकृतिक या अप्राकृतिक रूप से मनुष्य का वीर्य अपना स्थान छोड़कर ज्ञात या अज्ञात अवस्था में बाहर निकल जाता है। नि:सन्देह मैथुन से वीर्य, आयु, स्वास्थ्य और यश की हानि होती है। मैथुन आठ प्रकार का होता है। एक भी मैथुन में रुचि लेने से धीरे-धीरे मनुष्य सम्पूर्ण मैथुन में प्रवेश कर जाता है। प्रत्येक मैथुन का परिणाम वीर्य नाश ही होता है। वीर्य के कण अपना स्थान छोड़कर अण्डकोश में पहुँच जाते हैं और अवसर पाकर किसी न किसी रूप में बाहर निकल जाते हैं।

युवाओं, युवतियों व गृहस्थियों से निवेदन है कि निम्नलिखित सात प्रकार के मैथुनों से स्वयं को बचा कर रखें :-

(1) स्मरण :- प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देखी या सुनी हुई स्त्री या पुरुष के रूप का ध्यान करना। **(2) वर्णन :-** स्त्रियों के गुण व शक्ल का वर्णन करना या उनके बारे में सोचना। **(3) क्रीड़ा :-** स्त्रियों के साथ हास-परिहास या खेल खेलना। **(4) प्रेक्षण :-** किसी भी स्त्री या पुरुष को काम दृष्टि या सुन्दरता की दृष्टि से बार-बार देखना या घूरना। **(5) गुप्त वार्तालाप :-** स्त्री एवं पुरुष के द्वारा एक-दूसरे के साथ गुप्त रूप से काम वासना सम्बन्धी बातें करना। **(6) संकल्प :-** स्त्री को देखकर/उसके गुण सुनकर, उसे पाने की मन में कामना लाना।**(7) आनन्द :-** सहवास में आनन्द की कल्पना करके स्त्री को पाने का प्रयत्न करना। **(8) साक्षात् मैथुन :-** स्त्री के साथ सम्भोग करना।

नोट:- किसी प्रकार का भी मैथुन हमारी मानसिक, आध्यात्मिक व शारीरिक शक्ति को प्रभावित करने वाला कार्य है। हानिकारक है। इससे हमारी आत्मा में आत्म-ग्लानि का भाव पैदा होता है।

लेकिन वैवाहिक जीवन में संयम में रहकर सन्तान उत्पत्ति के उद्देश्य से संभोग करना उचित है। वेदानुकूल है।

हस्त मैथुन (आत्मव्यभिचार)

मनुष्य के जननेन्द्रिय एवं मूत्र प्रणाली अन्य अंगों की तरह आवश्यक व पवित्र है। यह ईश्वर द्वारा दी गई उत्पादन-शक्ति का प्रतिनिधि है। गन्दे वातावरण एवं अनुचित खान पान के कारण मनुष्य इसी सन्तानोत्पत्ति शक्ति का अपमान व दुरुपयोग जान-बूझकर अथवा अज्ञानतापूर्वक कर बैठता है। कृत्रिम साधनों द्वारा, हस्त स्पर्श से, उल्टा लेटकर या किसी प्रकार से दबाव डालकर या वासना का मानसिक चिंतन करके मनुष्य जननेन्द्रिय को उत्तेजित कर देता है और वीर्य को शरीर से बाहर, कुछ क्षण के आनन्द के लिए निकाल देता है। इसी को हस्तमैथुन या आत्म व्यभिचार कहते हैं।

हस्तमैथुन एक कुकर्म है। प्रकृति के नियमों का उल्लंघन है। इसमें हाथ के द्वारा वीर्य स्खलित किया जाता है। अज्ञानता और बुरी संगत के कारण किशोरावस्था में बच्चे अथवा युवा इस दुष्कर्म में प्रवेश कर जाते हैं। प्रारम्भ में उन्हें इससे कुछ आनन्द सा प्रतीत होता है। लेकिन इसके द्वारा जो शरीर की मानसिक एवं शारीरिक शक्ति क्षीण होती है, जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे स्थायी होते हैं। दु:खदायी होते हैं।

हमें सदैव याद रखना चाहिये कि प्रकृति इस कुकर्म को कभी माफ नहीं करती है। अत: इससे हुई हानि की पूर्ति अनेक उपायों के करने के बाद भी होना असंभव है।

आजकल समाज में यह मैथुन विद्यार्थियों एवं युवकों में बहुत फैलता जा रहा है। यही नहीं, बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग भी इसका शिकार हो रहे हैं। यह रोग बड़ा भयानक है। मनुष्य इसको छिपकर व अकेला करता है। धीरे-धीरे मनुष्य इसका गुलाम हो जाता है और यह क्रिया धीरे-धीरे गम्भीर बीमारी का रूप धारण कर लेती है। मनुष्य मानसिक रोगी हो जाता है। लाख कोशिश करने पर भी यह आदत नहीं छूटती।

हस्तमैथुन के कारण

(1) हस्तमैथुन के दुष्प्रभावों का ज्ञान न होना।

(2) मूत्रेन्द्रिय की ठीक प्रकार से नियमित सफाई न करना। इसके कारण खुजली होने लगती है और युवकों का हाथ जननेन्द्रिय पर जाने लगता है और हस्तमैथुन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

(3) उलटे लेटकर पढ़ने या सोने से भी इन्द्रिय पर दबाव पड़ता है और कभी-कभी हस्तमैथुन की प्रवृत्ति हो जाती है।

(4) गर्म प्रकृति का भोजन व पेय पदार्थों के अधिक सेवन से भी जननेन्द्रिय में उत्तेजना जल्दी होती है।

(5) स्कूल या कॉलेज में बुरी संगति में रहकर बच्चे इस दुष्प्रवृत्ति का शिकार हो जाते हैं।

(6) कुछ लोगों को अधिक चिन्ता करने से भी वीर्य स्खलित स्वप्न दोष के रूप में हो जाता है।

(7) वासना वाले सिनेमा, नाटक देखना, गन्दे नाविल, पुस्तकें पढ़ना, अश्लील चित्रों को-किताबों या इन्टरनेट पर देखना आदि कारणों से भी मन में उत्तेजना एवं कामुकता आती है। फलस्वरूप युवक हस्तमैथुन के शिकार हो जाते हैं।

(8) खाली समय में सुन्दर स्त्रियों के बारे में सोचना, उनके चित्र देखना अथवा मन में वासना सम्बन्धी विचार लाना भी हस्तमैथुन का एक कारण है।

(9) तंग कपड़े पहनना भी उत्तेजना को उत्पन्न करता है।

हस्तमैथुन के परिणाम व हानिया (1)

(1) वीर्य में कैलशियम और फासफोरस बहुत अधिक मात्रा में होता है जोकि जीवन के संचालन के लिए अति आवश्यक है। हस्तमैथुन में वीर्यनाश होकर शरीर धीरे-धीरे निर्बल हो जाता है। शक्ति क्षीण हो जाती है। जननेन्द्रिय की नसें ढीली पड़ जाती हैं। इन्द्रिय की निर्बलता एवं शरीर में रुधिर की कमी के कारण धीरे-धीरे दृष्टि में कमी, सिर में दर्द, पैरों और जोड़ों में दर्द, कब्ज, बुद्धि की तीव्रता में कमी, स्वप्नदोष, प्रमेह और तपैदिक जैसी भयंकर बीमारियाँ उत्पन्न होने लगती हैं।

(2) वीर्य नाश से शरीर में रुधिर की कमी होती जाती है। अत: वीर्य नाश करने वाले को रुधिर की कमी सम्बन्धी सब बीमारियाँ धीरे-धीरे घेरने लगती हैं।

(3) वीर्य नाश से स्नायुओं में दुर्बलता आ जाती है, उनमें वीर्य धारण करने की शक्ति नहीं रहती। लिंग की मांसपेशियाँ कभी-कभी टूट जाती है और लिंग में सूजन भी आ जाती है।

(4) इससे पाकस्थली की उष्णता समाप्त होती जाती है। फलस्वरूप धीरे-धीरे अन्न/भोजन पचना कम होता जाता है।

(5) हृदय कमजोर होता जाता है। बहुमूत्र की बीमारी लग जाती है। सोते-सोते स्वप्नदोष होने लगता है।

(6) हस्तमैथुन के कारण कभी-कभी व्यक्ति मानसिक तनाव के कारण मानसिक रोग से पीड़ित व पागल होते हुये भी पाये जाते हैं।

हस्तमैथुन के परिणाम व हानिया (2)

(7) हस्तमैथुन के कारण इन्द्रिय आगे से मोटी और पीछे से कुछ पतली हो जाती है। जिसके फलस्वरूप उसकी उत्पादक शक्ति धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त लम्बे समय में इन्द्रिय कभी-कभी उत्तेजित होना बन्द कर देती है।

(8) हस्तमैथुन द्वारा शुक्र कीटों के बाहर निकलने पर मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्ति धीरे-धीरे समाप्त होने लगती है जिससे स्मृति, प्रतिभा, बुद्धि-सभी धीरे-धीरे नष्ट होने लगती है।

(9) यह मन का रोग है। धीरे-धीरे मनुष्य वीर्य-धारण करने की शक्ति खो बैठता है। उसके उत्पादक अंग अयोग्य हो जाते हैं।

(10) आत्मबल, आत्मविश्वास एवं इन्द्रिय निग्रह धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है।

(11) हस्तमैथुन करने के बाद व्यक्ति प्राय: स्वयं से घृणा करता है।

(12) विवाह के बाद सम्भोग को लेकर अपनी पत्नी से झगड़ा होने की संभावना बढ़ जाती है।

नोट

वीर्य नाश का प्रभाव शरीर पर लम्बे समय में होता है। जरूरी नहीं है कि उपरोक्त बीमारियाँ/कुप्रभाव तुरन्त हो जायें, लकिन इसमें सन्देह नहीं कि उपरोक्त बीमारियाँ वीर्य ह्रास के कारण भी उत्पन्न होती हैं। अनेक कारणों में वीर्य नाश भी उपरोक्त बीमारियों को आमंत्रित करने में एक कारण है।

हस्तमैथुन से बचने के उपाय

(1) वीर्य नाश और काम विकार से बचने के उपाय-जो पहले दिये गये हैं, उनका पूर्णतया पालन करें। (विचार-165-166)

(2) शरीर में वीर्य, ईश्वर द्वारा प्रदान अद्‌भुत शक्ति से बनता है। इसका नाश करना महापाप है। ईश्वर व प्रकृति इसे कभी भी क्षमा नहीं करते हैं। अत: इस पाप से दूर रहना ही उचित है।

(3) दिन में दो बार शौच जाने की आदत डालो। कब्ज न होने दें।

(4) मन को बलवान बनायें। ईश्वर को साक्षी मानकर नित्य संकल्प लीजिए कि अब यह कुकृत्य कभी नहीं करूँगा।

(5) नित्य ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना (वैदिक सन्ध्या या सूक्ष्म प्रार्थना) कीजिए। प्रार्थना के बाद प्रतिदिन उपरोक्त संकल्प दोहरायें और ईश्वर से संकल्प सफल होने में सहायता मांगिए।

(6) सदैव अच्छे कार्यों में व्यस्त रहने की आदत डालिये। कुसंगति से दूर रहें। खाली समय में वैदिक ग्रन्थ पढ़ें एवं वैदिक ज्ञान के लिए किसी भी आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में अवश्य जायें।

(7) समाज में सभी स्त्रियों को बेटी, बहिन या माता-उनकी आयु के अनुसार-मानिये। हृदय या मस्तिष्क में कभी काम वासना नहीं उठेगी। इस भावना का अभ्यास रोज मन ही मन में (जब भी किसी स्त्री के दर्शन हों)करें।

(8) जननेन्द्रिय को ईश्वर ने केवल सन्तान उत्पत्ति एवं मूत्र निकास के लिए दिया है। ईश्वर द्वारा दिये गये पवित्र अंग का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये अन्यथा ईश्वर व प्रकृति से कठिन दंड मिलेगा, ऐसी भावना मन में सदैव बनाये रखें।

स्वप्नदोष-कारण व चिकित्सा

स्वप्नदोष एक मानसिक रोग है। स्वप्न में शुक्राशय से वीर्य-स्खलन की प्रक्रिया को स्वप्नदोष कहते हैं। इसमें सोते हुए वीर्य बाहर निकल जाता है। स्वप्नदोष नहीं होना चाहिये। यदि एक या दो मास में स्वप्नदोष एक बार हो तो डरने की बात नहीं है। फिर भी यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

स्वप्नदोष व हस्तमैथुन में अन्तर

स्वप्न 5-10 सैकण्ड में समाप्त हो जाता है। स्वप्नदोष स्वप्न के समय ही होता है। स्वप्नदोष में जो वीर्य शरीर का अंग नहीं बनता, केवल वही निकलता है। हस्तमैथुन या अधिक विषय भोग में पर्याप्त समय लगता है। इससे मस्तिष्क व हृदय में एक भयंकर धक्का लगता है। वह वीर्य जो शरीर का अंग बन चुका होता है, वह भी पतला होकर शरीर से बाहर निकल जाता है और मनुष्य को शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रूप से कमजोर करता है।

स्वप्नदोष के कारण

1. उत्तेजक, तले हुय व मीठे पदार्थों का अधिक सेवन करना।
2. अधिक भोजन करना या बार-बार भोजन करना।
3. शारीरिक कमजोरी के कारण भी स्वप्नदोष हो सकता है।
4. बुरे वासनायुक्त स्वप्न आना।
5. जननेन्द्रियों की सफाई ठीक प्रकार से न रखना।
6. हस्तमैथुन व अतिमैथुनकी आदत छोड़ने के कारण कुछ समय तक स्वप्नदोष हो सकता है।
7. कामुकता व चिन्ता उत्पन्न करने वाले स्वप्नों का आना।
8. मानसिक व वाचिक ब्रह्मचर्य के नियमों का उल्लंघन करना।
9. दिन में अथवा सोने से पहले वासनायुक्त सिनेमा, नाटक, चित्र देखना अथवा गन्दे नावेल/पुस्तकें पढ़ना या वार्तालाप करना।

स्वप्नदोष की चिकित्सा

(1) वैदिक ग्रन्थ व उत्तम पुस्तकों का स्वाध्याय करें।

(2) प्रेम सम्बन्धी नाटक, टी.वी. सीरियल, नाबिल, पिक्चर, पाश्चात्य फिल्में आदि न देखें/ न पढ़ें। इन्टरनेट का प्रयोग कम करें।

(3) काम-भावना के विचारों को मन में स्थान न दें। यम-नियम का पालन करें।

(4) सोने से पहले अच्छे ग्रन्थ पढ़ें।

(5) प्रात: व साय: ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना-उपासना (वैदिक सन्ध्या) करके संकल्प लें कि मैं बुरे स्वप्नों की समस्या से बाहर निकल आऊँगा। प्रभावित सन्ध्या विधि हेतु ''वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि'' पुस्तक पढ़ें।

(6) दिन में अपने विचारों को पवित्र रखें।

(7) दिन में प्रात:काल अथवा सायंकाल के समय शारीरिक व्यायाम, प्राणायाम व आसन का अभ्यास, अपनी आयु और मौसम के अनुसार रोज करें।

(8) स्वप्नदोष के सभी कारणों से दूर रहें।

(9) बुरी संगत से बचें।

(10) यदि समस्या गम्भीर है तो कुछ समय के लिए आयुर्वेदिक औषधियों का सहारा लें।

(11) समस्या से घबरायें नहीं। अपने रहन-सहन की जीवन शैली एवं व्यवस्था ठीक करें।

(12) रात को सोते समय अधिक पानी और दूध का सेवन न करें।

(13) रात को लघुशंका (पेशाब) करके सोयें।

गुदा-मैथुन

गुदा-मैथुन का अर्थ है पुरुष का पुरुष या बालक के साथ मैथुन करना। गुदा-मैथुन एक अप्राकृतिक क्रिया है। बहुत बड़ा पाप है। सृष्टि में यह प्रथा नाशकारी है। प्रकृति के प्रतिकूल है। कुछ व्यक्ति अपनी स्त्रियों के साथ भी गुदा मैथुन करते हैं तो कुछ पशुओं के साथ। यह ठीक नहीं है। इससे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह कर्म बहुत ही नीच है। इस प्रकार वीर्य ह्रास से मनुष्य धीरे-धीरे बल रहित होने लगता है। कोई भी बीमारी उस पर तुरन्त प्रभाव डालती है। जिस पुरुष या बालक के साथ यह क्रिया की जाती है उसके स्वास्थ्य के लिए भी अति हानिकारक है। इससे सदा बचना चाहिये।

समाज में कुछ पुरुषों को गुदा मैथुन करने की बुरी आदत होती है। वे जान पहिचान अथवा परिचित विद्यार्थियों अथवा युवाओं को एकान्त का अवसर पाकर एवं लालच देकर अपना शिकार बनाते हैं और अपनी वासना की तृप्ति करते हैं। अत: सभी माता-पिता व अभिभावकों से निवेदन है कि इस कुकर्म के प्रति सतर्क रहकर अपने बच्चों और युवाओं की रक्षा करें।

लक्ष्मी (धन) और वीर्य
व्यर्थ में
नहीं गंवाना चाहिये।

पत्नी व्यभिचार (1)

आजकल कुछ पुरुषों की ऐसी मान्यता है कि स्त्री का सन्तोष काम भाव से ही हो सकता है अथवा स्त्री में काम भाव पुरुष से कई गुणा अधिक होता है। अत: पति यह आवश्यक ही नहीं समझता कि पत्नी की इच्छा को भी जाना जाय। यह मान्यता बिल्कुल गलत है। वेदादि शास्त्रों की आज्ञाओं के विपरीत है।

अपनी पत्नी के साथ भी अधिक सम्भोग हानिकारक है। विवाह विलास के लिए नहीं है। उत्तम संतान पैदा करने के लिए है। उत्तम राष्ट्र के निर्माण के लिए है। अपनी पत्नी के साथ सहवास पाप नहीं है। जब तक यह संयम में रहकर किया जाए अन्यथा वीर्य रक्षा की दृष्टि से यह भी हानिकारक है। जिस वीर्य से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्ति बढ़ती है, उसको बिना उद्देश्य के विषय-वासना में नष्ट करना सबसे बड़ी मूर्खता है।

विवाह के बाद पत्नी को विषय-भोग की सामग्री समझना एक भयंकर भूल है। पत्नी के मानव अधिकारों का उल्लंघन है। इससे सुख, शान्ति व बल की प्राप्ति नहीं होती। इसे सच्चा प्रेम समझना मूर्खता है।

प्रत्येक-पति-पत्नी को समझना चाहिये कि विवाहित होकर विषय-वासना का शिकार हो जाना, शरीर, मन तथा आत्मा के लिए घातक है। पति-पत्नी के संभोग के लिए स्त्री की स्वाभाविक इच्छा का होना अनिवार्य है और यह इच्छा ऋतुधर्म के ठीक बाद ही होती है। प्रकृति का यही नियम है। इस नियम का उल्लंघन करके स्त्री सहवास करना व्यभिचार ही कहा जा सकता है। क्रमश:.....

पत्नी व्यभिचार (2)

इच्छा न होते हुए भी पत्नी संग करना हस्त मैथुन से भी बुरा है। जीवन साथी अपनी पत्नी को विषय वासना की तृप्ति का साधन-मात्र बना लेना एक बड़ा पाप है और स्त्री के साथ किया गया अन्याय है।

विवाह जैसी पवित्र संस्था की ओट में पत्नी व्यभिचार करना वैदिक आज्ञा का उल्लंघन है। अत: प्रत्येक गृहस्थी से विनम्र निवेदन है कि अपनी पत्नी की रुचि दैनिक कार्यों व सामाजिक कार्यों में उत्पन्न करें और इस पाप से बचें।

पत्नी व्यभिचार से प्राय: निम्नलिखित समस्यायें उत्पन्न होती हैं :-

1. स्त्री का सौन्दर्य धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है।
2. स्त्री के अंग शिथिल एवं बुद्धि, बल और गुणों का धीरे-धीरे ह्रास होने लगता है।
3. गर्भधारण की शक्ति नष्ट होने लगती है।
4. स्त्री अनेक रोगों का शिकार होने लगती है।
5. जीवन दुखमय महसूस होने लगता है।
6. स्त्री के सामाजिक व आध्यात्मिक उन्नति में बाधा आती जाती है जोकि परिवार, समाज व राष्ट्र के लिए भी हानिकारक है।

दुर्बलता और रोगों से रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य-पालन करें।

वेश्या व्यभिचार (पर-स्त्री-गमन)

पर-स्त्री-संग-विवाह से पूर्व अथवा पश्चात्-वेश्या व्यभिचार कहलाता है। अपनी स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्री या वेश्या के साथ सहवास करना एक भयंकर पाप है।

वेश्यावृत्ति एक आर्थिक समस्या और सामाजिक दुर्व्यवस्था का परिणाम है। यह हमारे समाज पर कलंक है। एक वेश्या भी हर व्यक्ति के साथ सहवास नहीं करना चाहती। लेकिन धन के लोभ में अथवा आर्थिक परिस्थितियों के कारण वह अनेक व्यक्तियों को अपने पास आने देती है। अनेक व्यक्तियों के साथ, अपनी इच्छा के या आत्मा की आवाज के विरुद्ध सहवास करने से वह धीरे-धीरे कई बीमारियों से ग्रसित हो जाती है। उसके गुप्त अंगों में विष पैदा हो जाता है। इसका प्रभाव सभी वेश्यावृत्ति करने वाले मनुष्यों पर पड़ता है और ऐसे व्यक्ति भी अनेक बीमारियों से पीड़ित हो जाते हैं। यह रोग एक पीढ़ी तक ही सीमित नहीं रहते, अपितु कई पीढ़ियों तक चलते हैं। इस प्रकार अपने धन का नाश करना, वीर्य को नष्ट करना, अनेक बीमारियों को निमन्त्रण देना एक बड़ी महामूर्खता है। इसे कोई भी व्यक्ति बुद्धिमानी नहीं कहेगा। अत: इस पाप से बचना चाहिये अन्यथा ईश्वर तो इसकी सजा अवश्य देगा ही। उसके दरबार में किसी भी पाप को क्षमा करने की कोई गुंजाइश या व्यवस्था नहीं है।

पर-स्त्रीगमन से होने वाली हानियाँ -

1. ऐसे व्यक्ति के घर में कभी शान्ति नहीं होती। 2. उसके चरित्र पर अपनी या परस्त्री कभी विश्वास नहीं करती। 3. उसकी समाज में घोर निन्दा होती है। 4. ऐसे मनुष्य और स्त्री की सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक उन्नति रूक जाती है। 5. ऐसे व्यक्ति का बुढ़ापा दु:खमय हो जाता है।

ब्रह्मचर्य और कन्या/स्त्री

स्त्रियों के लिए भी ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। श्रेष्ठ, बुद्धिमान, दीर्घायु व उत्तम सन्तान प्राप्त करने के लिए पुरुष का वीर्य और स्त्री का रज शक्तिशाली, शुद्ध व दोष रहित होना चाहिये।

आज के वातावरण व सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्त्रियों को कम से कम 18 वर्ष तक और युवाओं को 25 वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके ही ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिये। इस अवस्था में दोनों का वीर्य पूर्ण रूप से परिपक्व हो जाता है और वे एक स्वस्थ, शक्तिशाली, दीर्घायु, बुद्धिमानबच्चे को जन्म दे सकते हैं। इसलिए दोनों को ही फैशन परस्ती छोड़कर, जीवन निर्माण हेतु, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन व स्वाध्याय (वैदिक ग्रन्थों का पढ़ना) कम से कम 18 वर्ष और 25 साल तक क्रमशः करना चाहिये।

वेदों में भी कन्याओं के लिए ब्रह्मचर्य पालन की आज्ञा दी गई है क्योंकि उन पर सन्तान उत्पत्ति सम्बन्धी संसार का बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। इसीलिए हमारे सभी प्राचीन धर्मशास्त्री व ऋषि–मनु, व्यास, गौतम, दयानन्द कन्या के ब्रह्मचर्य के समर्थक और छोटी अवस्था में विवाह के घोर विरोधी रहे हैं।

Without practising brahmcharya
one cannot
concentrate steadily on God.
Sri Ram Krishna Paramhans

ग्रहस्थ में ब्रह्मचर्य

विवाह का विधान बहुत प्राचीन है। यह ईश्वर द्वारा सृष्टि व समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए बनाया गया है। विवाह का उद्देश्य धर्मयुक्त सन्तान पैदा करना है। इसीलिए शास्त्रों में ग्रहस्थ आश्रम में रहने वाले पति-पत्नी को संयम में रहने की आज्ञा है। केवल सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही मैथुन का विधान है। अतः जो पुरुष संयम में रहकर सन्तान की अभिलाषा में स्त्री के साथ सम्भोग करता है। वह भी ब्रह्मचारी है। गर्भ के लक्षणों का ज्ञान हो जाने पर एवं सन्तान के उत्पन्न होने के तीन वर्ष बाद ही हमारी धर्म शास्त्र पुनः गर्भाधान की आज्ञा देते हैं।

आजकल भारत में ग्रहस्थ आश्रम भी बहुत दूषित होता जा रहा है। अच्छी सन्तान पैदा करना तो दूर रहा, विवाह होते ही काम वासना को पति-पत्नी तृत्प करने के लिए सारी मर्यादायें तोड़ देते हैं। अतः अधिकतर बच्चों को गर्भाधान अनियमित रूप से हो रहा है। इसीलिए समाज में धर्म और संस्कार की कमी होती जा रही है और छोटे-छोटे बच्चों/युवाओं को विभिन्न प्रकार के पाप कर्मों में लिप्त देखा जा रहा है।

यदि संस्कारित व स्वस्थ सन्तान पैदा करना है, सन्तान को उत्तम और सद्गुणी बनाना है, इसको दीर्घ आयु प्रदान करना है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि ग्रहस्थ आश्रम में ब्रह्मचर्य का उचित पालन किया जाय।

असमय में, बिना संयम के, पति के साथ मैथुन करना भी, पति-पत्नी दोनों के लिए व्यभिचार है। यह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन है और पाप है।

प्रार्थना, ध्यान, यज्ञ में सफलता के लिए पढ़ें।

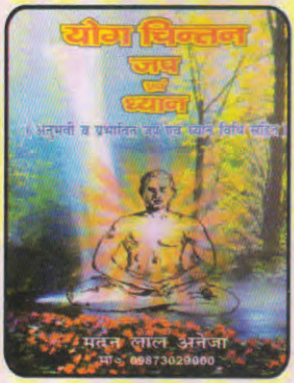

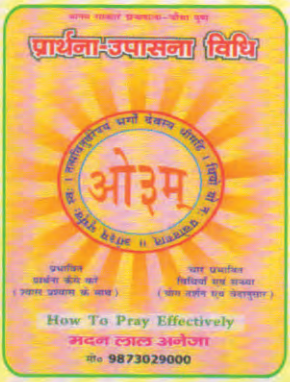

1. चारों पुस्तकें Website www.manavsanskar.com पर निःशुल्क डाउनलोड की जा सकती हैं।

2. आध्यात्मिक उन्नति के लिए पढ़ें-प्रतिदिन वैदिक विचार at www.facebook.com/vaidicvichaar

3. पुस्तकों की PDF और प्रतिलिपि मंगवाने के लिए फोन नं. 9873029000 (मदन अनेजा) पर केवल whats up ही करें

The Author is a Joint Registrar (Retired), Supreme Court of India and Former Advisor (Law), National Human Rights Commission, New Delhi